विप्लव पुस्तकमाला—१३

भस्मावृत्त चिन्गारी

[कहानी संग्रह]

यशपाल

विप्लव—कार्यालय—लखनऊ.

समर्पण

...... असफलता और निराशा की राख पड़-पड़ कर तुम्हारे जीवन की चिंगारियां दबी चली जा रही हैं। मैं उन्हें फूंक कर सजग कर देना चाहता हूँ।

.... सम्मिलित जीवन से मुझे मोह है।

विप्लव
२ जुलाई ४६

यशपाल

बात यह है कि—

परिवर्तन के इस युग में हमारे प्रतिष्ठित साहित्यक और कलाकार सतर्क और चिन्तित हैं। उन्हें भय है, उत्साह और उत्तेजना से मूढ़ नई पीढ़ी के साहित्यकों और कलाकारों के हाथ में पड़कर हमारी परम्परागत कला अपनी शुद्धता, प्रतिभा और प्रयोजन न खो बैठे। नई पीढ़ी के कलाकार कला के सभी रूपों, कविता, कहानी और चित्रकला का उपयोग अपनी सूझ के अनुसार वर्तमान समस्याओं की अभिव्यक्ति और हल के लिये निर्ममता और निरंकुशता से कर रहे हैं। प्रतिष्ठित कलाकारों की आशंका एक सीमा तक युक्तिसंगत है। उत्तेजना मूढ़ता और निरंकुशता से सभी वस्तुओं और साधनों का अनियमित प्रयोग भोंडा और बेढंगा हो सकता है। प्रश्न यही है कि नई पीढ़ी का कलाकार मूढ़ और निरंकुश है या नहीं ?

कला मनुष्य के भावों का परिमार्जित रूप है। ऐसा रूप जो कलाकार-व्यक्ति समाज के विचार चिन्तन और उपयोग के लिये समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। स्थान और समय के भेद से जैसे मनुष्य के विचारों को प्रकट करने का मुख्य साधन भाषा पृथक-पृथक होती है वैसे ही स्थान और समय के अन्तर से भावों अथवा कला को प्रकट करने के साधनों या बाहिरी रूप में अन्तर आजाना आवश्यक है। स्थान और समय का दूसरा नाम है परिस्थितियां। परिस्थितियों से न केवल भाव को प्रकट करने वाले साधनों के रूप में अन्तर आ

जाता है बल्कि भाव भी दूसरे प्रकार के हो जा सकते हैं। मनुष्य के भाव या भावना की परिभाषा की जाय तो हम उसे उसकी महत्वाकांक्षा कह सकते हैं। एक छोटी मछली की महत्वाकांक्षा मगरमच्छ बनने की हो सकती है और चींटी की महत्वाकांक्षा हाथी बनने की होगी—मगरमच्छ बनने की कल्पना शायद चींटी न कर सके।

मनुष्य की परिस्थितियों का प्रभाव न केवल कला की उत्पत्ति और रूप पर ही पड़ता है बल्कि कला के मूल्यांकन पर भी पड़ता है। कला का कौन रूप और कौन सीमा कुरुचि पूर्ण, वासनात्मक और प्रचारात्मक होजाती है यह बात आलोचक और समाज के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है – जैसे सभी मनुष्यों के लिये पथ्य एक ही वस्तु नहीं हो सकती। जैसे नग्नता के बारे में हमारा संस्कार और अभ्यास उचित-अनुचित का निश्चय करते हैं, वैसे ही वासना के सम्बंध में भी। किसी स्थान और समय में मुँह ढांक कर पेट उघाड़ा रखना लज्जाशीलता हो सकता है, दूसरे समय और स्थान में इससे ठीक उल्टे। हमारे चरित्रवान पूर्वजों के सुसंस्कृत साहित्य में नारी का 'मोहिनी' 'सुमुखी' और 'नितम्बिनी' सम्बोधन करना शालीनता थी आज हमारे हीनचरित्र समाज में किसी स्त्री को उसके मुखपर 'सुन्दरी' कहना जूतों की मार को निमंत्रण देना है। महाकवि कालिदास का नारी की रोमांचित जंघा का वर्णन करना, हर और सती की रतिक्रिया का चित्रण न अश्लील समझा गया न वासनात्मक। परन्तु यदि आज का लेखक नारी के वस्त्रों के भीतर दृष्टि मात्र पहुँचाने का प्रयत्न करता है तो वह नैतिकता का शत्रु समझा जाता है। इस पर हमें संताप यह है कि हम नैतिकता की दृष्टि से अपने पूर्वजों की अपेक्षा बहुत गिरते जा रहे हैं। सम्भवत: कारण यह है कि वासना को चरितार्थ करने की क्षमता हममें अपने पूर्वजों के समान नहीं रह गई। मन्दाग्नि के रोगी के समान घी हमारे लिये विष होगया है। सदाचार और

नैतिकता का एक दृष्टिकोण और मानदण्ड हमारे पूर्वजों के सामने भी था और एक हमारे भी है।

इसी प्रकार प्रचार की भी समस्या है। कलाकार के भाव और कल्पना जीवन के अनुभवों की भूमि पर ही खड़े हो सकते हैं। यदि कला में जीवन की समस्या का आना दोष है तो फिर कला का प्रत्यक्ष रूप है क्या ? किसी भी कलाकार की कृति जीवन का एक रूप पाये बिना प्रकट नहीं हो सकती। प्रश्न है:—कला में प्रकट जीवन का रूप किस समस्या का संदेश देता है ? भावशून्य, संदेशशून्य, कला को क्या हम कला कह सकते हैं ? यहाँ भी निर्णय का आधार हमारे संस्कार और अभ्यास ही हैं। जिन भावों और संदेशों का हम परम्परा और अभ्यास से स्वीकार करते आये हैं कला में उनका समावेश हमें केवल शाश्वत सत्य की प्रतिष्ठा जान पड़ता है, प्रचार नहीं। स्वामी की सेवा में सेवक के जान पर खेल जाने का करुण चित्रण हमारी कलात्मक वृत्तियों को गुद-गुदाकर सद्वृत्तियों को जगाने वाला समझा जाता है। वह हमें प्रचार नहीं जान पड़ता। दुश्चरित्र पति की निन्दा न सुनने के लिये पतिव्रता के कान मूंद लेने की कहानी हमें केवल आदर्श जीवन की प्रतिष्ठा ही जान पड़ती है, प्रचार नहीं परन्तु जब आज का कलाकार अन्नदाता स्वामी के लिये सेवक के प्राणत्याग की भावना का विद्रूप कर उसकी उपमा कुत्ते से देता है जो न्याय और तर्क सब कुछ भूल केवल स्वामिभक्ति को ही धर्म समझता है तो यह प्रचार जान पड़ता है। इसी प्रकार जब आजका कहानी लेखक मध्यम श्रेणी की एक सम्मानित महिला और वेश्या में यही अन्तर देखता है कि सम्मानित महिला का पालन केवल एक व्यक्ति करता है और वेश्या का पालन अनेक व्यक्ति करते हैं, तब आजके लेखक पर घोर अनाचार के प्रचार का दोष लगाया जाता है।

हमारे पूर्वज साहित्यक की दृष्टि में वंश उत्पत्ति के स्रोत नारी की

शुद्धता सबसे अधिक महत्व की वस्तु थी। वह दृष्टिकोण और प्रयोजन नैतिक था यह हम स्वीकार करते हैं परन्तु आज के लेखक का भी एक प्रयोजन हो सकता है:—वह चाहता है हमारे समाज का आधा भाग नारी समाज भी आज के कठिन संघर्ष में अपने आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक दायित्व को समझे केवल पुरुष के कंधों पर बोझ ही न बना रहे।

कला और साहित्य का उद्देश्य सभी अवस्थाओं में मनुष्य में नैतिकता और कर्तव्य की प्रवृत्तियों की चिंगारियों को भावना की फूंक मारकर सुलगाना ही रहता है। अन्तर रहता है, हमारे विश्वास और दृष्टिकोण में। कभी हम समझते हैं इन चिंगारियों से निकली ज्वाला प्रकाश कर मार्ग दिखायेगी ; कभी हम समझते हैं, यह ज्वाला हमारे समाज की रक्षा करनेवाले छप्पर को फूंक कर राख कर देगी।

विप्लव
२ जुलाई ४६

यशपाल

१

भस्मावृत्त चिन्गारी

वह मेरे पड़ोस में रहता था। उसके प्रति मुझे एक प्रकार की श्रद्धा थी। उसका व्यवहार एक रहस्य के कोहरे से घिरा था। रहस्य बनावट का नहीं जो आशंकित कर देता है; सरलता का रहस्य, जो आकर्षण और सहानुभूति पैदा करता है। वह साधारण से भिन्न था, शायद कुछ ऊँचा।

उसके बड़े और छोटे भाइयों ने अपने श्रम से पिता की कमाई सम्पत्ति की बुनियाद पर स्वतंत्र कारोबार की इमारतें सफलता-पूर्वक खड़ी कर लीं। वे सफल गृहस्थ और सम्मानित नागरिक बन गये। वे पुराने परिवार-वृक्ष की कलमों के रूप में नयी भूमि पा, नये परिवार की लहलहाती शाखा के रूप में कल्ला उठे। पिता को अपने दोनों पुत्रों की सफलता पर गर्व और संतोष था।

और 'वह' सब सुविधा और अवसर होने पर और अपने शैथिल्य के कारण पिता की अधिक करुणा पाकर भी कुछ न बन सका। उसने यत्न ही नहीं किया। उसके पिता को इससे उदासी और निरुत्साह हुआ; परन्तु मैं उसका आदर करता था। उसमें लोभ न था। वह सन्तोष की मूर्ति था। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा उसमें न थी। वह त्यागी था। यही तो तपस्या है।

पिता की मृत्यु के बाद दोनों कर्मठ व्यापारी भाइयों ने हज़ारों की आमदनी होते हुए भी जब उत्तराधिकार की सम्पत्ति के बटवारे में पाई-पाई का हिसाब कर, उसे केवल दो पुराने मकान देकर ही निबटा दिया;

उसने कोई चिन्ता या व्यग्रता प्रकट न की। भाइयों की अपने से दस-बीस गुना अधिक आमदनी के प्रति उसे कभी ईर्षा करते नहीं देखा। घर में अर्थ-संकट अनुभव कर भी उसे कभी विचलित होते नहीं देखा। उसकी शान्ति और सौन्दर्य की वृत्ति सभी जगह शान्ति और सौंदर्य पा सकती थी। इनका स्रोत उसके भीतर था। वह अन्तर्मुख और आत्मरत था। कला के लिए उसका जीवन था और कला ही उसका प्राण थी। कला से किसी प्रकार की स्वार्थ-साधना उसे कला का अपमान जान पड़ता।

परिचय उसका अधिक विस्तृत न था। परिचय से उसे घबड़ाहट होती थी। उसके चित्रों से प्रभावित होकर मैंने स्वयं उससे परिचय किया। वह कुछ सकुचाया और फिर जैसे उसने मुझे सह लिया, और आन्तरिकता भी बढ़ गई। कभी वह सन्ध्या, दोपहर या बिल्कुल तड़के ही आ बैठता। समय कोई निश्चित न था। कभी अकेले ही शहर से चार-पाँच मील दूर जा बैठा रहता। उसका सब समय प्रायः किर्मिचमढ़ी टिकटी के आस-पास रंग-घुली प्यालियों और कूँचियों के चक्कर में बीत जाता।

वह बहुत कम बोलता। जब बोलता उसमें बहुत-सी विचित्र बातें रहती थीं। सहमत हुए बिना भी उनकी क़द्र करनी पड़ती थी। क्योंकि वह एक असाधारण व्यक्ति की बात थी।····सूखकर ऐंठ गये पत्तों और सूर्य की किरणों में मकड़ी के जाले पर झलमलाती ओस की बूँदों में उसे जाने क्या-क्या दीखता ?·········वह उनमें खो जाता।

एक दिन मई महीने की ठीक दोपहर में मोटर में छावनी से लौट रहा था। सूर्य की किरणों से वाष्प बन रही धूल में, बियाबान सड़क पर उसे अकेले शहर की ओर लौटते देखा। उसके समीप गाड़ी रोक पुकारा—'इस समय कहाँ ?'

'ऐसे ही जरा घूमने निकला था'—उत्तर मिला।

विस्मयाहत हो पूछा—'इस धूप में ?'—कार का दरवाज़ा उसके लिए खोल आग्रह किया—'आओ!'

'नहीं तुम चलो !'—अपनी धोती का छोर थामे, मेरे विस्मय की ओर ध्यान दिये बिना उसने उत्तर दिया।

एक तरह से जबरन ही उसे गाड़ी में बैठा लिया। मजबूरी की हालत में मेरे समीप कुछ क्षण चुपचाप बैठ उसने धीमे से कहा—"देखो कितना सुन्दर है.......जैसे पालिश की हुई चाँदी फैल गई हो ! जैसे.......जैसे.......बरफ़ पड़ जाने के बाद उसका गुण बदल गया हो.......White heat (श्वेत उत्ताप) और देखो, तरल गरमी की लहरें कैसे पृथ्वी से आकाश की ओर उठ रही हैं ; जैसे गरमी के तारों से धुनी जाकर पृथ्वी आकाश की ओर उड़ी जा रही है। मेरी ओर दृष्टि कर उसने कहा—'ज़रा यह काला चश्मा उतारकर देखो !'

मजबूरन चश्मा उतारना पड़ा। आँखों में जैसे तीर-से चुभ गये। और फिर जो उसने कहा था ठीक भी जँचने लगा। सोचा, कितना असाधारण है यह व्यक्ति ? यह शायद संसार के लिए एक विभूति है।

ऐसे ही दूसरे एक दिन शरत् ऋतु की संध्या के समय बड़े पार्क के किनारे वृक्षों के नीचे से, सूखी घास पर गिरे सूखे, कुड़मुड़ाये पत्तों को रौंदते धोती का छोर थामे, अपना फटा पम्पशू रगड़ते उसे उतावली में चले जाते देखा।

पुकारा। उसने सुना नहीं।

अगले दिन उसके यहाँ जाकर देखा, किर्मिच-मढ़ी टिकटी के सामने खड़ा वह तन्मय कूची से रँग लगा रहा है। बहुत ही सुन्दर चित्र था—हाल में अस्त हुए सूर्य की गहरी, सिन्दूरी आभा आकाश में अर्धवृत्ताकार फैल रही थी। उस पृष्ठ-भूमि पर आकाश की ओर उठी हुई उँगली की तरह एक सूखे पेड़ की टहनी पर श्याम चिरैया का जोड़ा प्रणयाकुल हो रहा था।

विस्मय-मुग्ध नेत्रों से कुछ देर चित्र को देख उससे पूछा—'कल तुम पार्क के समीप से आ रहे थे, पुकारा तो तुमने सुना ही नहीं।'

प्रश्नात्मक दृष्टि से उसने मेरी ओर देख, कुछ सोचकर उत्तर दिया–'कल पार्क में चिड़िया के जोडे को देखा—इस प्रकार और वह तुरन्त ही उड़ गया। सोचा इस चीज़ को यदि स्थायी रूप दे सकूँ ···।'

× × ×

उसके अनेक चित्रों 'निर्वासन', 'गौरीशंकर', 'गंगा और सागर' ने प्रसिद्धि नहीं पाई परन्तु विश्वास से कह सकता हूँ, जिस दिन पारखी आँखें उन्हें देख पायेंगी, संसार चकित रह जायगा। मुझे गर्व था ऐसे प्रतिभाशाली कलाकार की मैत्री का।

मेरा विचार था, वह सांसारिकता से तटस्थ है; भावुकता के साम्राज्य में ही वह रहता है। परन्तु एक दिन हम उसी के मकान पर बैठे थे। वह न जाने किस विचार में खो गया। उस चुप से उकताकर भी विघ्न न डाला। सोचा, न जाने किस अमूल्य कृत्ति के अंकुर इसके मस्तिष्क में जन्म पा रहे हों ?

समीप के ज़ीने पर उसकी साढ़े तीन बरस की लड़की खेल रही थी। वह अलापने लगी—'पापा···पापा···पापा !' मानों नींद से जगाकर उसने कहा—'How sweet कितना मधुर·······?' समझा कलाकार भी मनुष्य होता है।

लक्ष्मी के लिए विद्वानों ने चपला शब्द ठीक ही प्रयोग किया है। वह स्थिर नहीं रहती। कलाकार के एक मकान में भूतों ने डेरा डाल दिया और उसका किराये पर उठना कठिन हो गया। उसकी आमदनी कम होती गई। अच्छे-भले मध्यम श्रेणी के खाते-पीते आदमी से उसकी हालत खस्ता हो गई। परन्तु उस ओर उसका ध्यान न गया। उपाय सुझाने और स्वयं उपाय कर देने के लिए तैयार होने पर भी

उसने इस बात को महत्व न दिया। उसे इससे कोई मतलब न था। त्याग और तपस्या क्या दूसरी चीज़ होती है ?

दूसरे बालक के प्रसव से पहले उसकी स्त्री बीमार हो गई। वह बीमारी असाधारण थी। खर्च भी असाधारण था। दो महीने में साढ़े-तीन हजार रुपया ख़र्च हो गया। एक मकान पहले से गिरवी था, दूसरा भी गया।' कोई शिकायत उसे न थी। केवल इतना उसने कहा—'यदि रुपये से मनुष्य के प्राण बच सकते हैं तो वह किसी भी मूल्य पर महंगा नहीं। किसी तरह स्त्री के प्राण बचे।

इस दारुण संकट के बाद कलाकार की अवस्था और भी शोचनीय हो गई, परन्तु उसकी तटस्थता में किसी प्रकार का परिवर्तन न आया। फटी खाल में भी वह इतना ही सन्तुष्ट था जितना ग्लेसकिड के पम्पशू पहने रहने पर।

अनेक दिन तक वह दिखाई न दिया। सुना एक चित्र में व्यस्त है। विघ्न न डालने के विचार से उसके घर भी न गया। मालूम होने पर कि नया चित्र पूरा हो गया, देखने गया।

चित्र का नाम था—'जन्म-मरण।' चित्र में प्रसूतिगृह का दृश्य था और शैय्या पर स्वयं उसकी स्त्री। रोगिणी के शीर्ण, चरम पीड़ा से व्यथित मुख पर मृत्यु का आतंक। उसकी आँखें नवजात शिशु की ओर लगी थीं जो उसकी पीड़ा और यन्त्रणा के मेघ से नक्षत्र की भांति अभी ही प्रकट हुआ था। प्रसूता के नेत्र प्रभात के आकाश की भाँति कुहासे से धुन्दले थे और उसकी पुतलियाँ बुझते हुये तारों की भाँति निस्तेज हो रही थीं। उस दिन इस चित्र को देख चुप रह गया। कुछ कह सकना भी सम्भव न था। परन्तु अनेक दिन तक इस चित्र की स्मृति मस्तिष्क से न उतरी।

× × ×

समाचारपत्रों में पढ़ा, बम्बई में अखिल भारतीय चित्र-प्रदर्शनी होने

जा रही है। कलाकार के सम्मुख उसके चित्र प्रदर्शनी में भेजने का प्रस्ताव किया। उसे उत्साह न था। उसका विश्वास था, स्वयं कला की पूर्णता में ही कला की साधना का फल है।

तर्क अनेक हो सकते हैं। समझाया—कलाकार कि प्रतिभा यदि केवल उसके निजी सन्तोष के लिए ही सीमित न रहकर दूसरों के सन्तोष का भी कारण बन सके ?

बहुत अनुरोध कर उन चित्रों को अपने ख़र्च पर बम्बई भिजवाया। प्राय: पन्द्रह दिन बाद प्रदर्शनी के संयोजकों का तार मिला–'यूरोप का कोई व्यापारी 'जन्म-मरण' चित्र के लिए पाँच हज़ार रुपया कीमत देने के लिए तैयार है।'

चित्र मेरी ओर से भेजे गये थे। इसलिए तार भी मेरे ही नाम आया। कलाकार की प्रकृति जानने के कारण यह प्रस्ताव उसके सम्मुख रखने में बहुत संकोच हो रहा था परन्तु यह भी विचार था कि यदि इस चित्र के मूल्य से एक दुखी परिवार का क्लेश दूर हो सकता है तो यह कला का अपमान नहीं। यह भी सोचा—जो व्यक्ति अपनी कमाई का पाँच हज़ार रुपया चित्र में अङ्कित कला और भावना के लिए न्योछावर कर रहा है, वह कलाकार की प्रतिभा और भावना दोनों का ही सत्कार कर रहा है। बहुत बचाकर अत्यन्त संकोच से वह प्रस्ताव उसके सामने रखा। परिणाम वही हुआ जिसकी आशा थी।

तार से सौदा नामंजूर होने की सूचना दे दी। उत्तर आया, ग्राहक दस हज़ार देने को तैयार है। इस बार और भी अधिक संकोच से कलाकार को सूचना दी। उसने उत्तर दिया–मैं नहीं चाहता था उन चित्रों को प्रदर्शनी में भेजा जाय। न मैं अपनी भावना का कोई मूल्य स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ। तुम उन चित्रों को वापिस मँगवा लो !'

क्रियात्मक क्षेत्र में इसे अव्यावहारिक समझकर भी कलाकार की त्याग-भावना और नि:स्वार्थ कला-साधना के प्रति मेरे मन में आदर का

भाव बढ़ गया। कलाकार की निष्ठा के प्रत्यक्ष उदाहरण से स्वीकार करना पड़ा, कला जीवन से भी ऊँची वस्तु है। बेशक साधारण जन की पहुँच वहाँ तक नहीं, परन्तु उस कला का अस्तित्व है अवश्य। सांसारिक स्थूलता में लिप्त रहकर हम उस कला के अतीन्द्रिय, सूक्ष्म सन्तोष को पा नहीं सकते। यह न्यूनता कला की नहीं, हमारी अपनी अयोग्यता है। वह कला उसी प्रकार अनादि, अनन्त है जैसे आत्मा और अपौरुषेय शक्ति का अस्तित्व। आप्त पुरुषों के अनुभव से ही साधारण पुरुष उसे समझ सकते हैं। कलाकार का सन्तोष इसका अकाट्य प्रमाण था। उस कला की अर्चना में कलाकार के परिवार का बलिदान इस सत्य का प्रमाण था कि कला से प्राप्त सन्तोष जीवन-रक्षा की भावना से भी अधिक प्रबल और महान है।

मैं स्वयम कला की वेदी से दूर हूँ। सांसारिकता की अड़चनों से छनकर आये कला के प्रकाश की सूक्ष्म किरणों को ही मैं पा सका हूँ। मैं कला की आराधना उसके पुजारी के प्रति अपनी श्रद्धा और आदर से ही कर सकता था; जैसे यजमान पुरोहित द्वारा यज्ञ कार्य का पुण्य प्राप्त करता है। मेरी उस श्रद्धा का स्थूल रूप था, कला के पुरोहित कलाकार की सेवा के लिए तत्परता।

× × ×

कलाकार की स्त्री शनैः शनैः बलि होते होते एक दिन नवजात शिशु को छोड़ चल बसी। कलाकार शोक के आघात से कुछ दिन संज्ञाहीन रहा। उसके पुत्र को स्त्री के भाई ले गये। संज्ञा लौटने पर कलाकार के होठों पर एक मुस्कराहट आ गई। उसने एक और चित्र बनाया—एक प्रकाण्ड हिमस्तूप की दुरारोह चढ़ाई पर एक क्षीण शरीर तपस्वी चढ़ रहा है। उसकी जीवन संगिनी चढ़ाई में क्लान्त और जर्जर हो गिर पड़ी है। तपस्वी यात्री दुविधा में है। वह घूमकर अपनी बरफ़ पर गिर पड़ी निष्प्राण संगिनी की ओर देखता है। दूसरी ओर हिमस्तूप

का शिखिर सप्राण-सा हो उसे अपनी ओर आह्वान कर रहा है........।

इस चित्र की भाव-गरिमा से मैं अवाक रह गया। चित्र क्या था, कलाकार की कूँची से उसके जीवन की कहानी और उसके त्याग की महत्वाकांक्षा, कला के प्रति उसका सगर्व आत्म-समर्पण। मैं अभिभूत रह गया; उस महान् उद्देश्य से परे लघु जीवन की बात क्या?

फिर भी शंकालु मस्तिष्क में प्रश्न उठही आता—कला की शक्ति जीवन में किस प्रकार चरितार्थ हो? कलाकार ने अपना उत्तर रेखा के स्वरों में निम्न चित्रपट स्थिर कर दिया था। प्रश्न करने पर उसने कहा—'अँधेरे आँगन में एक दीपक जलता है। उस दीपक का आलोक बहुत दूर से भी दिखाई पड़ता है और समीप से भी। दीपक की लौ के समीप आते जाने से प्रकाश को उज्ज्वलता मिलती है और दृष्टि को सुस्पष्टता। परन्तु यह दीपक को प्राप्त कर लेना नहीं है। प्रकाश के इस केन्द्र में है केवल अग्नि।....जो तेल और बत्ती को जलाती है।

दीपक की लौ प्रकाश की और देखनेवाले पथिकों की चिन्ता नहीं करती और दीपक जलता रहने के लिए तेल और बत्ती का जलते रहना आवश्यक है।

कलाकार का शरीर दारिद्र्य और अवसाद से क्षीण होता गया। परन्तु उसके नेत्रों की प्रखरता बढ़ती गई। वह अपनी साधना में रत था। जितना ही गहरा मूल्य वह अपनी इस आराधना के लिए अदा कर रहा था, उसी अनुपात में उसकी निष्ठा बढ़ती जा रही थी।

× × ×

बहुत सुबह उठने का अभ्यास मुझे नहीं है, विशेषकर माघ की सर्दी में। परन्तु पिछले दिन थकावट अधिक हो जाने के कारण समय से एक घंटे पूर्व सो गया था, इसलिए उठा भी कुछ पहले। समय होने से बरामदे में खड़ा सामने फुववाड़ी की ओर देख रहा था, माली कुछ करता भी है या नहीं।

सुबह,सुबह गरम कपड़े पहने, हिरन के खुर जैसे छोटे-छोटे जूतों से खुट -खुट करते बच्चों ने आकर उँगली थाम ली—'पापा, अम छैर कन्ने जा रए हैं। पापा भैया भी गाड़ी में जारा है। राधा भी जा रई है। पापा, तुम तुम भी चलो !'

श्रीमतीजी शाल में लिपटी बैठी रहती हैं परन्तु बच्चों को सुबह ही गरम कपड़े पहना, आया राधा के साथ सूर्य की प्रथम किरणों के सेवन के लिए सड़क पर भेज देती हैं। कारण, हमारा क्या है; परन्तु बच्चों का स्वास्थ्य ही तो सब कुछ है।

बन्नो उँगली से खींचे लिये जा रही थी, जैसे ऊँट की नकेल थामे उसका सवार आगे-आगे चला जा रहा हो। चेस्टर में सर्दी से सिकुड़ता हुआ बेटी की आज्ञा के अनुगत चला जा रहा था। वह मुझे सड़क तक ले आई और छोड़ना न चाहती थी। रात की पोशाक के धारीदार पायजामे में यों आगे जाना उचित न था। बच्चों को बहलाने के लिए इधर-उधर देख रहा था।

हमारे बँगले से लगी बाँई ओर की ज़मीन खाँ साहब ने ली थी। वह दस बरस से यों ही पड़ी है। चार-दीवारी तक नहीं खींची गई। अपने बँगले की चार-दीवारी की पुश्त पर दृष्टि पड़ी।

देखा—सूर्य की प्रथम किरणों में, दीवार के साथ उग आये ओस से भीगे झाड़-झंखाड़ में, एक फटी दरी के तिहाई टुकड़े पर मनुष्य शरीर का काला ढाँचा मात्र पड़ा है;समीप टीन का एक डिब्बा और रोटी का ऐंठा हुआ टुकड़ा। सूती कम्बल का एक टुकड़ा भी जो शरीर से नीचे खिसक आया था। इस सर्दी में वस्त्र सँभालने की सुध उस शरीर में न थी।

क्षण भर में उसका पूर्व इतिहास कल्पना में कौंध गया—कोई भिखमंगा रात बिता रहा होगा, जाड़े में ऐंठ गया। शरीर निश्चेष्ट था। शायद मर गया ?

बच्चों को तुरंत उस दृश्य से हटाने के लिये राधा के साथ आगे

भेज दिया। समीप जाकर देखा। हाथ से स्पर्श करने में आशंका हुई; शायद कोई छूत की बीमारी हो ? परंतु था तो वह भी मनुष्य ही। छूकर देखा—बहुत क्षीण ऊँ-ऊँ स्वर! कराहट सी सुनाई दी अभी प्राण थे।

मनुष्य के प्रति करुणा और भय से मन विचलित हो गया। तुरन्त लौट हेल्थ-आफ़िसर अरोड़ा साहब को फ़ोन किया। म्युनिसिपैलिटी की एम्बुलेन्स आ गई। अपनी गाड़ी में हस्पताल साथ गया। इधर-उधर कह-सुनकर उसे भरती करवा दिया। दो घंटे बाद वह हस्पताल के गद्देदार पलंग पर लेटा था। गरम पानी की बोतलें उसके पाँव और बगल में रख दी गईं। टोंटीदार प्याले से उसके मुँह में ब्राण्डी मिला दूध दिया जा रहा था।

लौटा तो दोपहर हो रही थी। अपने काम का हर्ज हुआ अवश्य परन्तु संतोष था। बँगले के भीतर गाड़ी घुमाने से पहले, बँगले के बाँई ओर की खुली ज़मीन के सामने कलाकार को परेशानी की-सी हालत भटकी नज़रों से कुछ खोजते देखा।

समीप जा पुकारा—'अरे भाई, तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?'........ आज सुबह अचानक दृष्टि पड़ गई। कुल घण्टे भर का मेहमान था। अब भी बच जाय तो बड़ी बात जानो............ओफ़ मनुष्य का भी क्या है ?........

उसी भटकी मुद्रा में कलाकार ने पूछा—'कहाँ गया वह ?'

'अरे भाई हस्पताल पहुँचा कर आ रहा हूँ—'बड़ी मुश्किल से डाक्टर को मनाकर भरती कराया.......समझो लिहाज़ था !'

वह जैसे प्रबल निराशा से हताश लौट पड़ा। अनेक बार बुलाने पर भी उसने सुना नहीं। बहुत दूर तक पैदल पीछे गया। उसने पलट कर देखा नहीं। बेबसी में लौट आया।

सन्ध्या समय एक जगह जाना ज़रूरी था परन्तु कम्पनी की डाक भी ज़रूरी थी। शीघ्रता से काग़ज़ देख दस्तख़त करता जा रहा था कि

कलाकार चौखटे में मढ़ी किरमिच लिये कमरे में आ घुसा।

किर्मिच को मेरी ही मेज़ पर रख क्षोभ-भरे स्वर में उसने कहा—'दो दिन से इसे बना रहा था। तुमने बेड़ा ग़र्क कर दिया............अब तुम्हीं इसे सँभालो!' वह लौट गया।

किर्मिच पर अधबने चित्र में सुबह का वह दृश्य जाग उठा था—'वही मृतप्राय भिखमंगा। काले चमड़े से मढ़ा उसका पंजर कला के जादू से अधिक सजीव हो उठा था। फटी दरी के टुकड़े पर एड़ियाँ रगड़ता हुआ! उसके हाथ, खुले होंठ, और हताश आँखें गुहार में आकाश की ओर उठी हुई........! चित्र अभी अपूर्ण था परन्तु उसकी उग्र वीभत्सता अत्यन्त सजीव थी।

पेन्सिल की घसीट में चित्र पर उसका शीर्षक लिखा था—'भस्मावृत चिनगारी।'

वह दो दिन से यह चित्र बना रहा था। दो दिन से वह म्रियमाण नर-कंकाल मृत्यु की यातना सह रहा था कि कला, मृत्यु की भस्म से आच्छादित हो जीवन की चिनगारी बुझने का दृश्य अपनी सम्पूर्ण दारुण वीभत्सता के सौन्दर्य सहित प्रस्तुत कर सके।

उस नर-कंकाल को उसकी ठण्डी चिता से हस्पताल के पलंग पर हटाकर मैंने कला की पूर्ति में व्याघात डाल दिया। मेरा यह अनाचार कलाकार के लिए असह्य था।

चित्र में मृत्यु की यातना से गुहार के लिए उठे नर-कंकाल के हाथों में कला मेरे अनाचार के प्रति दुहाई दे रही थी........। कला की आत्मा मेरी भर्त्सना कर रही थी....और मैं उसके सम्मुख अपराधी।

दुर्भाग्य यह कि पश्चात्ताप का साहस भी नहीं।

वह चित्र, मानवता का वह चित्र अब भी वैसा ही है। कलाकार क्षुब्ध है। कला अपूर्ण है........शायद पूर्णता की प्रतीक्षा में।

२

गुलाम की वीरता

सबसे दुखी परबस। इसलिये कि उसे अपना दुख दूर करने का अवसर नहीं रहता। उसकी सामर्थ्य, चेतना और सूझ दुख दूर करने के प्रयत्न में नहीं, दुख अनुभव करने और सहने में ही व्यय होती हैं।

कहने को तो बस गरमी थी—वर्षा न होने से असाधारण गरमी! आसाढ़ भर तपता ही रहा। बादल घिर आते परन्तु बरसते नहीं। केवल हवा रुक कर घुटसा जाता। इस पर जेल! दीवारों और पेड़ों की चोटियों पर सूर्य की किरणें रहते बारिक में बन्द हो जाना पड़ता।

गरमी, गरमी में बेबसी, परवशता। कैदी उन्मुक्त श्वास और शरीर पर वायु का स्पर्श पाने के लिये बारिक के जंगलों के पास आ घिरते। गरमी से जेल के कुओं में पानी कम पड़ गया। शरीर का पसीना शरीर पर सूख कैदियों की त्वचा कड़ी और झामे की तरह खुरदरी हो गई। खिजलाहट से कैदियों के नाखून अपनी ही खाल खोंच डालते।

बारिक के दस जंगलों के सामने बहत्तर कैदियों के लेटने के लिये स्थान न था। कभी सख्त मिजाज कानूनी जमादार रौंदकी ड्यूटी पर होते तो कैदियों को जंगले के समीप बैठने या उसे छू लेने का भी अवसर न रहता। उन्हें कैदियों के व्यवहार में जंगला काटने की नीयत दिखाई देने लगती। कैदी ओटे (मिट्टी का आधा हाथ ऊँचा चौतरा) पर लेटे अंगोछे या हिस्ट्री टिकट से बदन पर हवा करते रहते और

अवर्षा से जेल की गरमी में बेबसी और वरपर फसल की बरबादी का चर्चा करते रहते। जेल में तौल से पूरी नौ छटाँक रोटी मिल जाने पर भी कैदियों की आँखों में अवर्षा से दुर्भिक्ष का त्रास छा रहा था। अनेक दिन वर्षा होने न होने के सम्बन्ध में शर्तें लगतीं रहीं। अनेक कैदियों ने अपने नाश्ते के चने, अपनी रोटी, चोरी और विशेष यत्न से मंगाया बीड़ी-तम्बाकू हार दिया परन्तु दैव न पिघला।

सावन की तीजका दिन था। बारिक बन्द हो चुकी थी। आकाश में घने बादल छाये थे। पर संध्या का अन्धेरा होने में बहुत देर थी। आँधी आगई। ऐसी आँधी आसाढ में कितनी ही बेर आ चुकी थी। आँधी से वर्षा की आशा होती थी परन्तु अनेक बेर निराश होजाने पर कैदियों ने आँधी में वर्षा का सन्देश न समझा। कुछ देर पहले बारिक के जंगलों से शान्ति का श्वास मिल रहा था अब वहां से धूल के बादल आने लगे। जेल की बारिक की यह विशेषता है कि गर्मी में वह अस्तबल की तरह घुटी रहती है और आँधी-पानी में पिंजरे की तरह खुली। जंगलों से धूल और छितरे खपरैलों की संधियों से धूल और नीमके सूखे पत्ते गिर-गिर नाक, आँखों और दाँतों में धूल ही धूल भर गई। कैदियों ने ओटों पर शरण ली किसी ने कम्बल से, किसी ने अंगोछे से नाक मुँह ढंका। आँधी को सम्बोधन कर गालियाँ सुनाई देने लगीं। जिन जंगलों के समीप स्थान के लिये लड़ाई में लोहे के तसलों से बीसियों कैदियों के सिर फूट चुके थे, अब खाली पड़े थे।

छत की खपरैलों पर आहट सुनाई दी। निराश हृदयों ने उसे पहले आँधी से उड़कर आये कंकरों और निबौरियों की बौछार मात्र समझा। परन्तु वे बूदें थीं! बूदें-बूदें मेंह-मेंह! बारिश!····सब ओर शोर मच गया। कैदी बारिक के जंगलों की ओर लपक पड़े। जैसे चिड़िया घर में जंगले से चना डाला जाने पर सभी बन्दर इकट्ठे हो जाते हैं।

राजनैतिक कैदी होने की गरिमा में अपने टाट फट्टे पर लेटा रहा।

बारिश हुई और ज़ोर की बारिश हुई । पहले प्यासी धरती ने जल पाकर गरम उसासें लीं और वह जल पी गई । परन्तु कुछ ही क्षण में जलकी पतली चौड़ी धारें बह निकलीं और अहाता ताल की भाँति भर गया । अब भी भारी बूदों से वर्षा जारी थी । जल की बूँदों की चोट से जल की सतह पर लाखों चकरियां नाच रही थीं ।

वर्षा का कौतुहल शान्त हो जाने पर जङ्गले फिर खाली हो गये । खपरैल की झीनी छत खूब टपक रही थी । रौंदकी ड्यूटी के जमादार नरम तबीयत के थे । इस लिये कैदियों को टपकन के नीचे अपने ओटों पर ही बैठे या लेटे रहने पर जोर नहीं दिया । बस इतना खयाल था कि जेलर या बड़े साहब की रौंदकी खट मिलने पर सब कैदी अपने अपने ओटों पर चुपके से लेट जाँय ! कैदी टपकन से बच टोलियाँ बना जगह-जगह बैठे थे । हथेली पर सुरती मलकर झाड़ने से फट-फट आहट हो रही थी ।

कादिर निधड़क बीड़ी पी रहा था । लोचन शहर की सही उर्दू में कह रहा था—'खाँ साहब, ऐसे में तो हम संतरे (शराब) की पूरी बोतल लेते थे ।'

रामजनवाने संशोधन किया—'लौण्डे हो न अभी बाबू, जो मजा गाँव में घरपर खिंची (शराब) में है उसे तुम क्या जानो ?

बिसरामने सहयोग दिया—'हाँ चौधरी चौपार में हो, महुआ की,········क्या कहने ?' उसने होंठ चूसने का शब्द किया ।

मुलुआने अपना मत प्रकट किया—'अरे भइय्या, नसा सुलफेका और सब हेच ! नसेका राजा सुलफा ।'

पढ़ा लिखा राजनैतिक कैदी होने के कारण पढ़ने के लिये हरिकेन लालटैन की सुविधा मिली थी । साधारण कैदियों की अनाचारपूर्ण उच्छृङ्खलता के प्रति विरक्ति दिखा, लालटेन ले एक ओर फट्टे पर लेट, कम्बल का तकिया बना अंग्रेज़ी के एक चित्रमय-साप्ताहिक में मन लगाने

का यत्न कर रहा था। पत्र की अपेक्षा कैदियों की कामनाओं और अनुभूतियों का नग्न चित्रण अधिक आकर्षक हो रहा था परन्तु उसमें रस लेना सम्मानित राजनैतिक व्यक्ति के लिये उचित न था। दृष्टि पत्र पर लगी थी पर कान स्वतंत्र थे।

जहाँ भी चार आदमी आ जुटें छोटे बड़े का भाव बन जाता है। कैदियों को जेल की चार दिवारी में मूँदकर एक जाति के पशुओं की भाँति बराबरी का व्यवहार कड़ाई से बरता जाता है। सभी का कुर्ता, जाँघिया, कम्बल, फट्टा, तसला-कटोरी और हिस्ट्री टिकट एकसा। परन्तु छोटे बड़े का भेद वहाँ भी फूट ही आता है। सभी कैदी, अंग्रेज़ी बाजा बजाने वालों के सामने स्वरों में नक्शेका कागज़ सम्भाले टिकटी की भाँति, हिस्ट्री टिकट ले एक लाइन में खड़े होते हैं। साहब उन्हें गिने हुये नागों की भाँति सरकारी दृष्टि से देखता है। इस समानता में भी संस्कार और सम्पति के सम्बन्ध से तुरन्त ऊंच-नीच हो जाता है! जैसे भुने चनों की झोली को झटकने से फूले-फूले ऊपर आजाते हैं। योंभी लुटिया चोट्टे के सन्मुख डाकू अभिमान करता है और चोर के सन्मुख फौजदारी और कत्ल में सज़ा पाया अपने चरित्र पर गर्व करता है। पढ़ा लिखा राजनैतिक कैदी सरकार का शत्रु होने के नाते सरकार के प्रतिनिधि जेलर और बड़े साहब का प्रतिद्वन्दी बन उन्हीं के समान सम्मान का अधिकारी हो जाता है। बड़े साहब के प्रति कैदी का सम्मान विवशता से और राजनैतिक कैदी के प्रति आदर और गरिमा की भावना से होता है। राजनैतिक कैदी के पास इस बड़प्पन की रक्षा का कुछ भी वाह्य साधन न रहने से कैवल व्यवहार और भावना से उसकी रक्षा करना कुछ आसान नहीं। उसके लिये कितना संयम आवश्यक होता है? साधारण व्यक्तित्व का कितना हनन?

लालटेन के प्रकाश में मेरे हाथों में फैले अखबार पर चित्र देख

मुलुआ कौतुहल से पीछे आ बैठा था। पुकार उठा—'बाघ है क्या? हुजूर सचमुच बाघ ही तो है.......! जय सतनारायण भगवान की!'

मुलुआ से बात करने के लिये काफ़ी कारण हो गया। करवट लेकर पूछा—'कभी बाघ देखा है?' मनमें विचार था, चिड़िया घर या सर्कस के जंगले में बन्द बाघ देख लेना एक बात है वर्ना बाघ देखना मामूली बात नहीं।

'हुजूर हम लोगों का क्या देखना.......ऐसे देखा काहे नहीं, खूब देखा है।.......मरे पड़े हैं। किसी सरकार ने सिकार किया होय?' उसके मुखसे निकला और विस्मय में उसके ओंठ खुले रह गये। आदर से उसने मरे हुये बाघ के चित्र को नमस्कार कर दिया।

पूछा—'क्यों बाघ का शिकार करने गये थे?'

मरे हुये बाघ के चित्र की ओर लगी मुलुआ की आँखें आदर और विस्मय से फैल रही थीं। मेरी बात से उसका स्वप्न टूटा—'अरे सरकार आप लोगों की जूती के गुलाम हैं। सिकार आप साहब लोग, राजा लोग खेलते हैं। हम लोग सिकार क्या खेलेंगे?' आदर के भाव से वह पीछे सरक गया।

मुलुआ बुन्देलखण्ड की किसी रियासत की प्रजा था। अंग्रेज़ी इलाके में डाका मारने के अपराध में चौदह बरस सज़ा काट रहा था। वही बात स्मरण कर पूछा—क्यों, तुम्हारे तो रियासत में घर-घर बन्दूक रहती है। शिकार नहीं खेलते तो क्या डाका ही डालते हो?'

'अरे सरकार पेट के लिये जानवर गिरा लिया सो एक बात है। नाहर का शिकार दूसरी बात।....वो राजा लोगन को काम हैं।' स्मृति में वीर रस के समावेश से वह तनकर बैठ गया। आँखें चमक उठीं—'सिकार सरकार राजे-रजवाड़े खेलते हैं, अपसर खेलते हैं। जैसे सुना इस जङ्गल में नाहर आया है। रियाया के नाम डोंडी पिट गई। चार गाँव की रैयत जङ्गल को घेर लेती है। जङ्गल को छानकर खेदा होता,

है। नाहर घेर लिये जाते हैं। तब सरकार हाथी पै आनकर मचान पर बैठते है'—वह वीर आसन से उचक उठा। कल्पना ने उसके हाथों में बन्दूक थमा दी। निशना साधकर वह बोला—'तब सबसे पहली गोली सरकार की दन से चलती है। कभी जंट साहब भी रहते हैं। सरकार चूक जायँ तो रजवाड़े लोगों की गोली। बन्दूकची भी साथ में रहते हैं।'

मुलुआ अत्यन्त उत्साह से हाथ और नेत्रों के संकेत से शिकार का वर्णन कर रहा था—'ऐसा होता है सरकार, सिकार!'

'तुमने काहेका शिकार किया है।'····फिर भी पूछा।

'अरे सरकार यही कभी ससा, साही, हिरन, लूमड़, दांती गिरा लिया कभी।'

'दांती क्या?'

'यही जिसे सरकार बनैला सुअर बोलते हैं।'

'बनैला सुअर?····क्या बन्दूक से?'

'नहीं सरकार। बन्दूक में बहुत खर्चा आता है। तोड़ेदार हो तब भी कम से कम दो आने का गोली-गट्टा तो चाइये। यही बल्लम कुल्हाड़ी से। दांती पर पत्थर मारो तो गोली की तरह सीधा आता है। उसे सीधा बल्लम पर ले! ससुर अपने ज़ोर पर बिंधा चला जाता है। बल्लम इस जगह दे, अपनी पसली ठोक उसने कहा—और बल्लम की नोक धरती में गाड़ अपना बदन ऊपर तौल दे। नहीं ससुर बड़ा जालिम होता है। हुजूर, दांत की चोट से पेड़ गिरा देता है। नाहर से कम थोड़े ही होता है। बस सरकार यह समझो कि नाहर पैना खंजर और दांती भारी लाठी जो पड़ जाय, खतम कर दे।

'और एक रोज़ तो सरकार समझो कि जिंदगी थी! बस वही रखने वाले हैं।'—उसने हाथ जोड़ आकाश की ओर संकेत किया।

मुलुआ कौतूहल से पीछे आ बैठा था। पुकार उठा—'बाघ है क्या? हुजूर सचमुच बाघ ही तो है……! जय सतनारायण भगवान की!'

मुलुआ से बात करने के लिये काफ़ी कारण हो गया। करवट लेकर पूछा—'कभी बाघ देखा है?' मनमें विचार था, चिड़िया घर या सर्कस के जंगले में बन्द बाघ देख लेना एक बात है वर्ना बाघ देखना मामूली बात नहीं।

'हुजूर हम लोगों का क्या देखना……ऐसे देखा काहे नहीं, खूब देखा है।……मरे पड़े हैं। किसी सरकार ने सिकार किया होय?' उसके मुखसे निकला और विस्मय में उसके ओंठ खुले रह गये। आदर से उसने मरे हुये बाघ के चित्र को नमस्कार कर दिया।

पूछा—'क्यों बाघ का शिकार करने गये थे?'

मरे हुये बाघ के चित्र की ओर लगी मुलुआ की आँखें आदर और विस्मय से फैल रही थीं। मेरी बात से उसका स्वप्न टूटा—'अरे सरकार आप लोगों की जूती के गुलाम हैं। सिकार आप साहब लोग, राजा लोग खेलते हैं। हम लोग सिकार क्या खेलेंगे?' आदर के भाव से वह पीछे सरक गया।

मुलुआ बुन्देलखण्ड की किसी रियासत की प्रजा था। अंग्रेज़ी इलाके में डाका मारने के अपराध में चौदह बरस सज़ा काट रहा था। वही बात स्मरण कर पूछा—'क्यों, तुम्हारे तो रियासत में घर-घर बन्दूक रहती है। शिकार नहीं खेलते तो क्या डाका ही डालते हो?'

'अरे सरकार पेट के लिये जानवर गिरा लिया सो एक बात है। नाहर का शिकार दूसरी बात।····वो राजा लोगन को काम हैं।' स्मृति में वीर रस के समावेश से वह तनकर बैठ गया। आँखें चमक उठीं—'सिकार सरकार राजे-रजवाड़े खेलते हैं, अपसर खेलते हैं। जैसे सुना इस जङ्गल में नाहर आया है। रियाया के नाम डोंडी पिट गई। चार गाँव की रैयत जङ्गल को घेर लेती है। जङ्गल को छानकर खेदा होता,

है। नाहर घेर लिये जाते हैं। तब सरकार हाथी पै आनकर मचान पर बैठते हैं'—वह वीर आसन से उचक उठा। कल्पना ने उसके हाथों में बन्दूक थमा दी। निशना साधकर वह बोला—'तब सबसे पहली गोली सरकार की दन से चलती है। कभी जंट साहब भी रहते हैं। सरकार चूक जायँ तो रजवाड़े लोगों की गोली। बन्दूकची भी साथ में रहते हैं।'

मुलुआ अत्यन्त उत्साह से हाथ और नेत्रों के संकेत से शिकार का वर्णन कर रहा था—'ऐसा होता है सरकार, सिकार !'

'तुमने काहेका शिकार किया है।'····फिर भी पूछा।

'अरे सरकार यही कभी ससा, साही, हिरन, लूमड़, दांती गिरा लिया कभी।'

'दांती क्या ?'

'यही जिसे सरकार बनैला सुअर बोलते हैं।'

'बनैला सुअर ?····क्या बन्दूक से ?'

'नहीं सरकार। बन्दूक में बहुत खर्चा आता है। तोड़ेदार हो तब भी कम से कम दो आने का गोली-गट्टा तो चाइये। यही बल्लम कुल्हाड़ी से। दांती पर पत्थर मारो तो गोली की तरह सीधा आता है। उसे सीधा बल्लम पर ले ! ससुर अपने ज़ोर पर बिंधा चला जाता है। बल्लम इस जगह दे, अपनी पसली ठोक उसने कहा–और बल्लम की नोक धरती में गाड़ अपना बदन ऊपर तौल दे। नहीं ससुर बड़ा जालिम होता है। हुजूर, दांत की चोट से पेड़ गिरा देता है। नाहर से कम थोड़े ही होता है। बस सरकार यह समझो कि नाहर पैना खंजर और दांती भारी लाठी जो पड़ जाय, खतम कर दे।

'और एक रोज़ तो सरकार समझो कि जिंदगी थी ! बस वही रखने वाले हैं।'—उसने हाथ जोड़ आकाश की ओर संकेत किया।

मार सकते हैं ? वो सरकार राजा का सिकार है। वो बन के राजा वो जग के राजा।'

मैं फिर पत्र में राजा साहब के शिकार का चित्र देखने लगा—राजा साहब मरे हुये नाहर पर पाँव रखे, हाथ में बन्दूक लिये अपनी वीरता का विज्ञापन कर रहे थे।

रियाया से जंगल घिरवा, हाथी पर चढ़, मचान पर बैठ, बारह बन्दूकची पीठ पीछे बैठा उन्होंने नाहर को मार गिराया था और मुलुआ, नाहर से दो-दो हाथ कर केवल भाले से उसे मार, भयभीत हो अपना हत्या का अपराध छिपा संतुष्ट था।

जो कमबख्त कमीन गुलाम होकर जनमा, वह वीरता क्या करेगा ? करेगा तो उसका दण्ड पायेगा।

३

महादान

सेठ परसादीलाल टल्लीमल की कोठी पर जूट का काम होता था। लड़ाई शुरू होने पर जापान और जर्मनी की खरीद बन्द हो गई। जहाज़ों को दुश्मन की पनडुब्बियों का भय था; अमेरिका भी माल न जा पाता।

आख़िर रकम का क्या होता? सरकार धड़ाधड़ नोट छापे जा रही थी। ब्याज की दर रोज़ रोज़-गिर रही थी। रुपये की कीमत गिर रही थी और चीज़ों की बढ़ रही थी।

सेठ परसादीलाल ने चावल का भाव चढ़ता देख चार कोठे खरीद लिये थे। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कुछ करना ही भला था। आठ रुपये मन खरीदे चावल का भाव ग्यारह रुपये जा रहा था। सेठ जी को भगवान की कृपा पर भरोसा था, जो पत्थर में बन्द कीड़े का भी पेट भरता है, वह भला सेठजी की सुध न लेता। नित्य दो घण्टे पूजा कर घर से निकलते थे।.....'और काम रह जाय, यह नहीं रह सकता।' पैंतीस हज़ार मन चावल में एक लाख साढ़े छियासठ हज़ार का मुनाफ़ा था। भाव अभी चढ़ रहा था। चावल निकालना सेठजी को मूर्खता जान पड़ती थी। वे और खरीद रहे थे।

अनाज का भाव चढ़ा तो देस भरके भूखे-नंगे कलकत्ते की ओर दौड़ पड़े। ऐसा दुर्भिक्ष कभी किसी ने सुना न था, देखे की तो कौन

की यह दुर्दशा ! बेचारों की गति कैसे होगी।' लाला जी की आँखों में आँसू आगये।

कोठी पर रुपये में एक पाई धर्मादय का कटता था। व्योपार व्योपार है, और धर्म धर्म। धर्मादय का रुपया कभी रोकड़ में लगा देते तो उसे ब्याज और मूल सहित फिर धर्मादय में कर देते! वह भगवद्-अर्पण था। कंगालों की दुर्दशा देख उसी खाते में से लाला जी दो बोरी चना रोज़ बंटवा रहे थे। फिर बयालीस हज़ार रुपया धर्मादय में हो रहा था। जैसे मुनाफ़ा बढ़ा वैसे धर्मादय भी।

'मुनीम जी'—आंखों में करुणा के आंसू भर सेठ जी ने हुकुम दिया—'जो भाव लकड़ी मिले, बीस हजार की लकड़ी खरीद कर घाटपर गिरवा दो! किसी बेचारे की मिट्टी की दुर्गति न होने पावे!

अगले दिन सुबह ही छापे में (समाचार पत्र में) छप गया—

'महादान! सेठ परसादीलाल टल्लीमलका महादान·······!

'गतिहीनों की अवस्था से जिनका कलेजा मुँह को आ रहा था पसे लोगों ने आ सेठ जी को धन्यवाद दिया।'

विनित स्वर में, अकिंचिन भाव से सेठ जी ने उत्तर दिया—'मैं किस लायक हूँ·······सब भगवान का ही है। उन्हीं के अर्पण है·······मनुष्य हैं किस लायक?'

४

गवाही

वकील पन्नालाल सक्सेना पाँच बजे के करीब कचहरी से लौटते। बाहर बैठक में दो-चार मुवक्किलों से बातचीत करते, चाय पीते और कपड़े बदल वे बाहर निकल जाते। साँझ प्राय: घर के बाहर महफ़िल-बाज़ी में ही कटती। दिन भर की मेहनत के बाद तबीयत तफ़रीह के लिये मचल उठती। यह उन्हें ज़िन्दगी का हक़ मालूम देता। कभी सिनेमा भी चले जाते; लेकिन ज़्यादा लुत्फ़ रहता अगर कहीं ब्रिज या फ्लाश की बैठक जम जाय।

कभी बैठक उनके अपने मकान पर भी जमती। यार-दोस्त आ जाते। दो-चार हाथ हो जाते। बीच-बीच में हलका ड्रिंक भी चलता। पर वह लुत्फ़ न आता जो चौधरीसाहब या मि० खन्ना के यहाँ मिक्स्ड कम्पनी में आता था। जहाँ कुछ स्त्रियाँ भी हों और ही बात रहती है। खेल भी चलता है, आँखें भी मज़ा लेती हैं, कुछ चुहल होती है, एक गुदगुदी-सी उठ आती है, तबीयत फ़रारी हो जाती है। ऐसे समय पाँच-सात रुपये की हार-जीत का ग़म नहीं होता।

मि० सक्सेना के अपने मकान पर यह बात न हो पाती। यों उनका परिचय कई माडर्न लेडीज़ से था। उनके मित्र शर्मा भी दो-चार को उनके यहाँ निमंत्रित कर सकते थे। पर यह ठीक न जंचता;

क्योंकि स्वयम् उनकी श्रीमती ज़रा परदा करती थीं। जो सन्तोष सक्सेना साहब को अपने घर न मिल सकता उसके लिये उन्हें बाहर जाना ही पड़ता।

मि० सक्सेना को रात में बाहर देरी हो जाती। गौरी इन्तज़ार में बैठी कुढ़ा करती। देर न भी हो तो भी, कचहरी से आये और फिर बाहर चले गये; यह भी कोई तरीका है? सुबह यों ही ज़रा अबेर से उठते। बाहर दफ़्तर में मुवक्किलों से बात करते-करते समय निकल जाता। जल्दी में खाना खाया और कचहरी चले गये।

घर में नौकर-चाकर होने पर भी देखभाल का काम ही काफ़ी था। घर पर की चीज़ बस्त सहेजने, लल्लू के कपड़े सीने, स्वेटर, मोज़े बुनने में ही सब समय निकल जाता और घर का काम पूरा न हो पाता। कभी मन बहलाने के लिये वह उपन्यास या पत्रिका पढ़ने लगती और उसमें मन रम जाता तो ऐसा जान पड़ता कि काम का हर्ज हो रहा है। इतनी व्यस्तता होने पर भी वकील साहब का घर से केवल भोजन-बिस्तर का सम्बन्ध उसे खल जाता। यह भी नहीं कि वकील साहब गौरी से प्रेम न करते हों। ज़ेवर और कपड़े बिना कहे ही आते रहते। फर्माइश के लिये ही मौक़ा न आ पाता। इनकार की गुंजाइश न थी।

वकील साहब गौरी के प्रति शब्दों से भी प्रेम प्रकट करते परन्तु गौरी के मन में जैसे विचार बैठ गया था कि वह केवल फुर्सत के समय प्रेम कर दिल बहलाने की चीज़ है—जैसे पिंजरे में लटकी मैना। कभी मन में आ गया, पिंजरे के समीप खड़े हो उससे कुछ बोलने बतराने लगे। ख्याल न आया था फुर्सत न हुई, न सही। वकील साहब के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं कि दिन भर वे क्या करते हैं, किन लोगों से मिलते हैं,..............वह क्या जाने? वे उसे साथ नहीं ले जाते क्यों कि उनके यहाँ परदा है। परदे में क्या रखा है—

वह सोचती—'बड़े-बड़े घरों की बहुएँ सब जगह आती-जाती हैं। पर्दा नहीं करतीं। वह भी पति के साथ आये जाये। पर वकील साहब को यह पसन्द न था। कभी गौरी सोचती, उन्हें यह सब पसन्द नहीं तो फिर वह खुद ऐसी जगह क्यों आते-जाते हैं।

ऐसी बातों पर कुढ़ कर गौरी मुँह फुला लेती तो उसे एक-दो दिन का फ़ाका हो जाता। जब वह मुँह खोल बैठती, वकील साहब नाराज़ हो जाते। कभी डाँट देते—'ऐसे ही मेम साहब बनना था तो विलायत में शादी की होती या ईसाइन बन जातीं।' दोनों रूठ जाते। गौरी तीन-तीन दिन बिन खाये रह जाती। वकील साहब और अधिक बाहर रह जाते। घर आते तो और भी चुप और बेसरोकार जैसे किसी होटल में आ टिके हों।

ऐसे झगड़ों के बाद सुलह होती तो वकील साहब गौरी को समझाते—'जब दुनिया में रहना है तो दुनियादारी निभानी ही पड़ती है, चार आदमियों के यहाँ उठना-बैठना होता ही है। सब जगह सब तरह के लोगों में तुम्हें कैसे लिये फिरें? बीस तरह के आदमी होते हैं, बीस तरह की बातें कह जाते हैं। घर की स्त्रियों की एक मर्यादा होती हैं, सम्मान होता है। कोई बेहूदा बात उनके सामने बक दे तो क्या किया जाय? शरीफ़ आदमी का तो मरन हो गया! भले घराने की औरतें ऐसी जगह जायें क्यों? अपनी इज़्ज़त अपने ही रखे रहती है। तुम घर में उकता जाती हो, तुम्हें कोई बाँधे तो है नहीं? पड़ोस में इन्सपेक्टर साहब हैं, धनपुरावाली रानी साहिबा हैं।........ चली जाया करो; उठ-बैठ आया करो! हमें अदालत पहुँचा कर मोटर योंही थान पर खड़ी रहती है। ड्राइवर दिनभर सोया ही तो करता है। अम्मा को साथ ले अपने मेल-मिलाप की सहेलियों में हो आया करो! इतने बड़े-बड़े रईस और तल्लुकेदार लोग हैं, अपने हिन्दुस्तानी ढंग से रहने वाले अफ़सर लोग हैं। इन सब के घर से कोई बाज़ारों में मर्दों

के साथ थोड़े ही कूदती फिरती हैं। अपने सलीके से, पर्दे के साथ सब जगह आना-जाना भी होता ही है।

× × ×

लगभग चार महीने गौरी ने वकील साहब के बाहर आने-जाने के विषय में मुंह फुलाकर कोई झगड़ा न किया। दोपहर में वह प्राय: माल साहब या रानी साहिबा के यहाँ चली जाती। रानी साहिबा की कोठी पर परदा था परन्तु वैसे होटल, रेस्टोरॉ, सिनेमा या पार्टी में जाने से भी एतराज़ न था, बशर्ते रिश्तेदार या परिचय के लोग न हों। गौरी एक रोज़ माल साहब की साली के साथ मैटिनी (दोपहर) में सिनेमा भी हो आयी; परन्तु वकील साहब से कहने का साहस न हुआ। वकील साहब को सन्तोष था, गौरी को समझ आगयी। शर्मा के साथ उनकी तफ़रीह का प्रोग्राम बिना अड़चन के चलने लगा। कभी अदालत की छुट्टी से पहली रात वे रातभर भी घर से ग़ायब रह जाते तो गौरी को झुंझलाहट न होती। चिन्ता होती तो केवल यह कि, हाय खाना जाने कहाँ और कैसे खाया होगा ?

× × ×

अगले दिन अदालत की छुट्टी थी। शाम को वकील साहब का प्रोग्राम शर्मा के साथ एक ब्रिज पार्टी में जाने का था। कई दिन से इस पार्टी का लालच शर्मा ने उन्हें दिया था। मि० जोशी के यहाँ मिक्स्ड पार्टी थी। शर्मा से सुना था, काफ़ी ज़िन्दा–दिल्ली रहती है। मिसेज़ कोहली ब्रिज में अच्छे-अच्छों के कान काटती हैं। बेगम रशीद भी खेलती तो ऐसा-वैसा ही हैं पर मज़ाक खूब चुस्त करती हैं। और कोई एक मिसेज़ सक्सेना हैं; कुछ सहमी हुई-सी। ज़रा उनकी आँखों में आँखें गड़ा दो तो चेहरा लाल हो जाता है। उनका झेंपना कमबख्त कलेजे को पार कर जाता है। तबीयत करती है उसे देखा ही करें। तुम्हारी मिस सिंह तो उसके सामने झांख-सी जान पड़ती हैं। यार, इस मिसेज़

सक्सेना पर कुछ खर्च करो तो हाथ आसकती है—कसम तुम्हारी, अभी कच्ची ही जान पड़ती है। बेगम रशीद और मिस सिंह की तरह घुटी हुई नहीं है।

नयी महफ़िल में जाने के शौक में वकील साहब ने काली अचकन पर ब्रुश और लोहा करवा मँगाया था और चूड़ीदार पायजामे को चिकने काग़ज़ की सहायता से चढ़ा रहे थे। बाहर जाने के ढंग से बढ़िया साड़ी और ज़ेवर पहने आ कर गौरी ने पूछा—'क्या गाड़ी कहीं जाने के लिये रुकवा रखी है ?'

'हाँ, ज़रा शर्मा साहब के यहाँ जा रहा हूँ। उनके एक दोस्त के यहाँ खाना है·······क्यों ?'

'अभी तो कपड़े पहन रहे हो ! न हो ड्राइवर हमें माथुर साहब के बंगले में छोड़ दे। उनके यहाँ से बुलाने आयी हुई हैं। बहुत ज़िद्द कर रही हैं। पाँच मिनिट लगेंगे। लौटते में हम उन्हीं की गाड़ी में आजायंगी। सक्सेना साहब को इसमें कोई असुविधा न थी। गौरी चली गयी।

शर्मा के यहाँ ज़रा हल्की-सी जमा कर वे दोनों जोशी के यहाँ पहुँचे। बाहर बरामदे में ही ब्रिज का शोर सुनाई दे रहा था :—स्पेड्स ·······टू हार्ट्‌स···थ्री नोट्रम्प·······डब्ल्स, ताशों के पत्तों की फर्राहट और प्वाइंट्स की गिनती। भीतर छोटी-छोटी मेज़ों पर चार-चार, छः-छः की बैठकें सब कुछ भूल, पत्तों में रम रही थीं। मिसेज़ और मिस्टर जोशी जगह-जगह घूमकर देख रहे थे कहाँ मिठाई या नमकीन की तश्तरी खाली हो गयी, कहाँ चाय, सोडे या एकाध पेग की दरकार है।

मि० जोशी ने शर्मा की पीठ थपथपा कर उनका स्वागत किया। शर्मा ने वकील साहब का परिचय कराया। अधिकांश लोगों का ध्यान पत्तों में गड़ा हुआ था। जिन्हें कुछ ध्यान देने की फुर्सत थी, उन्हीं से

होती। ऐसी इज़्ज़त बिगाड़ने वाली दगाबाज, बदमाश औरत को क़त्ल कर देने के सिवा और क्या सज़ा हो सकती है ? कानून की गिरफ़्त को वे खूब समझते थे। औरत के क़त्ल के ऐसे दो मुकद्दमे वे लड़ चुके थे।

उनका दिमाग़ कानून की लाइन पर चलने लगा····औरत की बेहयाई से इश्तआल में आकर की गयी हरकत········इन्तहाई इश्तआल पैदा करनेवाले हालत का सिलसिला वे दलील में बांधने लगे:—एक शरीफ़ घराने की परदानशीन औरत········पति को एक सहेली के यहाँ जाने का विश्वास दिला कर उसका बदचलन लोगों की सोहबत में जाना········जहाँ औरतें बेनक़ाब हों, शराब पी जारही हो ! उसकी बीवी के बारे में शर्मा जैसे मशकूक चाल-चलन के आदमी का मज़ाक····

पति का वहाँ पहुँच जाना।

पहुँच जाना किस सिलसिले से ····?

एक दोस्त के साथ।

उस दोस्त की गवाही····

पति का खुद ऐसी जगह अक्सर जाना····?

पति के अपने चाल-चलन का सवाल अलहदा है ; लेकिन उसे इश्तआल तो आ सकता है।

दिमाग़ी परेशानी के कारण वकील साहब के लिये कुर्सी पर बैठे रहना मुश्किल हो गया। पीठ पीछे हाथ की उँगलियों को एक दूसरी में उलझाये वे फर्श पर चक्कर काटने लगे। क्रोध और बेचैनी बढ़ती जा रही थी। गौरी के अभी तक न लौटने की वजह ?····उसकी इतनी मजाल ? वे चाहते थे, एकदम गौरी उनके सामने आ जाय और वे मुँह से बिना कुछ बोले दोनों हाथों से उसका गला घोंट दें।

विचार और कल्पना के लिये मिले समय ने मस्तिष्क को गहराई में उतार दिया। सर्वनाश की उत्तेजना का ज्वार उतर कर वे पैंतरे से

गौरी को सज़ा देने की बात सोचते हुए फर्श पर आगे-पीछे चहल-कदमी करने लगे ।

उसी समय माल साहब की मोटर अहाते में आयी और कोठी के पिछवाड़े के दरवाज़े के सामने रुकी । गाड़ी के दरवाज़े के खुल कर बंद होने का शब्द भी सुनाई दिया । भय से काँपती हुई गौरी आँगन से अपने कमरे की ओर जाती हुई भी सक्सेना साहब की कल्पना में दिखाई दे रही थी ।

क्रोध और उत्तेजना से उसका गला घोंट देने के लिये वकील साहब की बाहें फड़क उठीं········

किन हालत में ? गवाही क्या होगी ?········

कानूनी दलील और गवाही की अदृश्य ज़ंजीरों ने उन्हें हिलने न दिया····कल्पना में ही वे गौरी का गला घोंटने का सन्तोष पा रहे थे । और सोच रहे थे :—फाहशा औरत का पति कहलाने से यों ग़म खाना ही क्या बेहतर नहीं ?

५

वफ़ादारी की सनद

पण्डित बंसीधर शहर जाने की पोशाक में, पयजामा, अचकन और किश्तीनुमा कढ़ी हुई टोपी पहने, मुँह अंधेरे से बिल्हरा स्टेशन पर टहलते हुये गोरखपुर जानेवाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। पन्द्रह-बीस दूसरे देहाती भी मोटे-मैले कपड़ों में, कंधे पर चदरा, झोली और हाथ में लाठी लिये शहर की गाड़ी की प्रतीक्षा में, स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर बैठे बात कर रहे थे। एक बहू चटकीली धोती पहने, दायें हाथ से थमे घूंघट में दो उँगलियों से आँख भर के लिये जगह बनाये, भीड़ की ओर पीठ किये, चाव से नये दृश्य देख रही थी। दूसरी मैले आँचल में अपने मैले बेटे को नज़र से ओट किये बासी रोटी का टुकड़ा खिला रही थी। कोई नये ढंग का जवान बीड़ी पी रहा था और कहीं दो-चार पुराने ढंग के आदमी मिल, लत्ता या बान सुलगा, चिलम से दम खींच प्रतीक्षा के शैथिल्य का बोझ हलका कर रहे थे। बात-चीत प्रायः कचहरी सम्बन्धी थी। गाड़ी नौ बजे गोरखपुर पहुँचती थी। प्राय: कचहरी में तारीख़ पर पहुँचनेवाले लोगों की ही भीड़ होती।

गाँव भर में एक पण्डित बन्सीधर ही एण्ट्रेंस तक पढ़े, सफ़ेदपोश, भले आदमी थे। इतना पढ़ लिख कर भी उन्हों ने सरकारी नौकरी नहीं की। अपना पुश्तैनी चला आया काम ही सम्भाला। आस-पास कई पुरवों में बंटी घरकी सत्तर-अस्सी बीघे ज़मीन थी, एक बजाज़े की

दुकान, लेन-देन का जमा हुआ कारोबार, और कोठे भी भर लेते। सरकारी नौकरी में मुसाहबियत चाहे जितनी हो परन्तु भीतर से खोखला ही रहता है। लावना के थाने के दारोगा साहब, यों बारह कोस तक उन्हें सलामी मिलती रहे, आये दिन पण्डितजी के यहाँ रुक्का भेज रकम उधार मँगाते रहते थे। पण्डितजी उनके सामने चाहे सलाम में दोहरे हो जायँ, पर दारोगा साहब की क्या बिसात कि उनकी बात टाल दें।

पण्डित जी भी कचहरी की ही बात सोच रहे थे। मुरकई और गफ़ूर दोनों के मामले में फ़ैसले की तारीख़ थी। राधे पर बेदखली की दरख़ास्त देने की थी। सोच रहे थे, इतना तो वकील का मेहनताना लग गया। दस-एक रुपये फैसले की नकल के नाज़िर ज़रूर लेंगे, डेढ़-एक सौ ऊपर से लग गया। सरौ, ज़मीन की तीन बरस की कमाई निकल गई। लगान जेब से भरेंगे। अरे, फिर फ़ायदा ही फ़ायदा है···· एक दफ़े खर्च हुआ तो क्या? इस मोल गोंइड़ के पाँच बीघे खेत बुरे नहीं। फिर उन्हें बाज़ार में भी कुछ काम था।····शाम को चार बजे की गाड़ी पकड़ लें तभी ठीक है। नहीं तो शहर में ख़र्च ही ख़र्च है, आराम सरौ कुछ नहीं। लेकिन गाड़ी ससुरी को क्या हो गया?····पौ फटते आ जाती थी!

प्लेटफार्म पर बैठे दूसरे लोग गाड़ी का आना-जाना भाग्य की बात मान, बतियाते, चिलम का दम लगाते, पसीने से गंधाते मोटे-मैले कपड़ों के नीचे बदन पर फूली घाम खुजाते, जम्हाई लेते प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु पढ़े लिखे पण्डितजी के लिये रेलगाड़ी का आना-जाना आंधी-पानी की भांति अगम रहस्य न था। वह जानते थे, रेल को आदमी ही चलाते हैं। उसके आने-जाने, 'लेट होने' का सामाचार और कारण स्टेशन मास्टर साहब से मालूम हो सकता है।

× × ×

प्रतीक्षा से उकता दो बेर पण्डितजी ने कागज लिखते स्टेशन मास्टर साहब से मुस्कराकर आदाब कर पूछा—'गाड़ी क्या लेट है ? ... ... कितनी लेट है ?'

स्टेशन मास्टर साहब ने समीप मेज़ पर रखे टेलीफोन (इंटरलॉकिंग टैलीफोन) को गाली दे, उत्तर दिया—'....कुछ बोल ही नहीं रहा। तार भी नहीं चल रहा है। जाने मखुआ स्टेशन पर सब मर गये !'

पूर्व में सूर्य अमराइयों से बाँस भर ऊपर चढ़ गया। धूप फैल गई थी। चारों ओर कमर तक उठे ऊख के खेतों पर पड़ी हल्की ओस से शीतल हो रही प्रातः वायु ओस उड़जाने से गरम होने लगी। समय को केवल सुबह, दोपहर और साँझ में बाँट सकने वाले देहाती भी, प्लेटफार्म पर ठाली बैठे समय की बरबादी अनुभव करने लगे। वे बैठे से खड़े होकर और खड़े से बैठ कर व्याकुलता प्रकट करने लगे। पण्डित जी बार-बार आँखों के आगे हाथ से छाया कर आकाश में बाँह फैलाये सिगनल की ओर देखते। वह यों निष्प्राण, निश्चल खड़ा था, जैसे कभी सदियों से हिला ही न हो। पण्डितजी के माथे पर हलका पसीना आने लगा। कुछ धूप में अचकन की गरमी से, और उससे अधिक तारीख़ पर कचहरी न पहुँच सकने की चिन्ता से।

सभी लोगों की आँखें पूर्व में मखुआ से आती लाईन की ओर चली गयीं। इंजन का धुआं नहीं, कुछ हल्की सी धूल हरे पेड़ों के ऊपर, सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश से सफ़ेद जान पड़ते नीले आकाश में दिखाई दी। कानों ने कुछ अस्पष्ट सा शब्द भी सुना—रेल की सीटी और गड़गड़ाहट नहीं, मनुष्य के कण्ठ की चीख़ पुकार सी।

और फिर कुछ ही क्षण में दिखायी दिया—झण्डे उठाये बहुत से लोग बाहें उठा चिल्लाते, नारे लगाते चले आ रहे हैं। बावली भीड़ के समीप पहुँचने पर सुनाई दिया—बन्दे ऽ ऽ ऽ मातरम् ! हिन्दू-मुसलमान की ऽ ऽ ऽ जय !....भारत माता की ऽ ऽ ऽ जय !....गाँधी बाबा

दुकान, लेन-देन का जमा हुआ कारोबार, और कोठे भी भर लेते। सरकारी नौकरी में मुसाहबियत चाहे जितनी हो परन्तु भीतर से खोखला ही रहता है। लावना के थाने के दारोगा साहब, यों बारह कोस तक उन्हें सलामी मिलती रहे, आये दिन पण्डितजी के यहाँ रुक्का भेज रकम उधार मँगाते रहते थे। पण्डितजी उनके सामने चाहे सलाम में दोहरे हो जायँ, पर दारोगा साहब की क्या बिसात कि उनकी बात टाल दें।

पण्डित जी भी कचहरी की ही बात सोच रहे थे। मुरकई और गफूर दोनों के मामले में फ़ैसले की तारीख़ थी। राधे पर बेदख़ली की दरख़ास्त देने की थी। सोच रहे थे, इतना तो वकील का मेहनताना लग गया। दस-एक रुपये फैसले की नकल के नाज़िर ज़रूर लेंगे, डेढ़-एक सौ ऊपर से लग गया। सरौ, ज़मीन की तीन बरस की कमाई निकल गई। लगान जेब से भरेंगे। अरे, फिर फ़ायदा ही फ़ायदा है···· एक दफ़े खर्च हुआ तो क्या ? इस मोल गोंइड़ के पाँच बीघे खेत बुरे नहीं। फिर उन्हें बाज़ार में भी कुछ काम था।····शाम को चार बजे की गाड़ी पकड़ लें तभी ठीक है। नहीं तो शहर में ख़र्च ही ख़र्च है, आराम सरौ कुछ नहीं। लेकिन गाड़ी ससुरी को क्या हो गया ?····पौ फटते आ जाती थी !

प्लेटफार्म पर बैठे दूसरे लोग गाड़ी का आना-जाना भाग्य की बात मान, बतियाते, चिलम का दम लगाते, पसीने से गंधाते मोटे-मैले कपड़ों के नीचे बदन पर फूली घाम खुजाते, जम्हाई लेते प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु पढ़े लिखे पण्डितजी के लिये रेलगाड़ी का आना-जाना आंधी-पानी की भांति अगम रहस्य न था। वह जानते थे, रेल को आदमी ही चलाते हैं। उसके आने-जाने, 'लेट होने' का सामाचार और कारण स्टेशन मास्टर साहब से मालूम हो सकता है।

× × ×

प्रतीक्षा से उकता दो बेर पण्डितजी ने कागज़ लिखते स्टेशन मास्टर साहब से मुस्कराकर आदाब कर पूछा—'गाड़ी क्या लेट है ?······ कितनी लेट है ?'

स्टेशन मास्टर साहब ने समीप मेज़ पर रखे टेलीफोन (इंटरलॉकिंग टेलीफोन) को गाली दे, उत्तर दिया—'······कुछ बोल ही नहीं रहा। तार भी नहीं चल रहा है। जाने मखुआ स्टेशन पर सब मर गये !'

पूर्व में सूर्य अमराइयों से बाँस भर ऊपर चढ़ गया। धूप फैल गई थी। चारों ओर कमर तक उठे ऊख के खेतों पर पड़ी हल्की ओस से शीतल हो रही प्रातः वायु ओस उड़जाने से गरम होने लगी। समय को केवल सुबह, दोपहर और साँझ में बाँट सकने वाले देहाती भी, प्लेटफार्म पर ठाली बैठे समय की बरबादी अनुभव करने लगे। वे बैठे से खड़े होकर और खड़े से बैठ कर व्याकुलता प्रकट करने लगे। पण्डित जी बार-बार आँखों के आगे हाथ से छाया कर आकाश में बाँह फैलाये सिगनल की ओर देखते। वह यों निष्प्राण, निश्चल खड़ा था, जैसे कभी सदियों से हिला ही न हो। पण्डितजी के माथे पर हल्का पसीना आने लगा। कुछ धूप में अचकन की गरमी से, और उससे अधिक तारीख़ पर कचहरी न पहुँच सकने की चिन्ता से।

सभी लोगों की आँखें पूर्व में मखुआ से आती लाईन की ओर चली गयीं। इंजन का धुआं नहीं, कुछ हल्की सी धूल हरे पेड़ों के ऊपर, सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश से सफ़ेद जान पड़ते नीले आकाश में दिखाई दी। कानों ने कुछ अस्पष्ट सा शब्द भी सुना—रेल की सीटी और गड़गड़ाहट नहीं, मनुष्य के कण्ठ की चीख़ पुकार सी।

और फिर कुछ ही क्षण में दिखायी दिया—झण्डे उठाये बहुत से लोग बाहें उठा चिल्लाते, नारे लगाते चले आ रहे हैं। बावली भीड़ के समीप पहुँचने पर सुनाई दिया—बन्दे ऽ ऽ ऽ मातरम् ! हिन्दू-मुसलमान की ऽ ऽ ऽ जय !····भारत माता की ऽ ऽ ऽ जय !····गाँधी बाबा

की····जय ! हमारे····ली ऽ ऽ ऽ डर जे ऽ ऽ ल से छो ऽ ऽ ड़ो ! ···अंग्रेज़ सरकार का ऽ ऽ ऽ नास हो !····"

× × ×

बिल्हरा स्टेशन पर गाड़ी की प्रतीक्षा करते लोगों की व्याकुलता कौतूहल में परिवर्तित होगयी। भीड़ में किसी को सम्बोधन कर कोई कुछ नहीं कहता परन्तु सभी लोग सब कुछ समझ जाते हैं। सुनने की भी आवश्यकता नहीं होती। लोग स्वयम ही समझ लेते हैं। भीड़ निरन्तर नारे और जय-जयकार की पुकार लगा रही थी। साँवले चेहरे धूप से लाल हो पसीने से चमक रहे थे। भर्राये हुए गले से लोग पुकार रहे थे—'देस में देसी लोगों का राज हो गया !'

पीढ़ीयों से दबी निर्बल की घृणा और प्रतिहिंसा ऐसे उछल पड़ी, जैसे कोई फ़ौलादी स्प्रिंग कब्ज़े से निकल कर उछल जाय। पीढ़ियों तक भूख न मिटने और आवश्यकताएँ पूर्ण न होने से आत्मविश्वास और गौरव को खोचुके, ऊसर में उगे पौधों जैसे बेपनपे, गठियाए से लोग, ग़रूर और सरूर में हाथ-पाँव फेंकने लगे। जैसे चींटियों का दल सदा उन्हें खाती रहनेवाली गिरगिट का सिसक़ता शव पाकर उस पर टूट पड़े, चढ़ बैठे। वैसे ही सदा से त्रस्त, दलित रहने-वाली, मनुष्यत्व खो चुकी प्रजा अपने विश्वास में सिसकते हुए अँग्रेज़ी साम्राज्य के शव पर कूदने लगी।

उस साम्राज्य का अंग-भंग कर उसे समाप्त कर देने के लिये जो कुछ भी सरकार की शक्ति के चिह्न रूप दिखाई दिया, उसे उखाड़ फेंकने, तोड़ डालने और भस्मकर देने के लिये भीड़ आतुर हो गयी।

पण्डित बंसीधर, मुरई, गफ़ूरा सब लोग कचहरी भूल गये। उनपर हुकुम चलाकर फैसला देने वाले का अस्तित्व न रहा। हिन्दुस्तानियत के गर्व से सीना फुलाये, अपनी और अपने देश की जय पुकारते, शत्रु का नाश पुकारते स्टेशन के प्लेटफार्म पर इकट्ठे हुए लोग कुछ से कुछ हो

गये। देखते देखते स्टेशन के सामने की लोहे की पटरी, जिससे अंग्रेज सरकार ने देश की धरती को बाँध रखा था, उखड़ कर टेढ़े बाँस की कमची की तरह हवा में झूलने लगी ; पटरी के सलीपर बिखर गये।

पण्डित जी अपनी स्थिति और सम्मान के विचार से आगे हो गये। लोग स्टेशन की कोठरियों पर झुक पड़े। सब कुछ टूट-फूट गया। बड़े बाबू पहले आशंकित और त्रस्त हुये और फिर भीड़ के साथ जय-जय पुकारने लगे। स्टेशन के गोदाम में कुछ माल के साथ मिट्टी के तेल के कनस्तर थे। भीड़ उधर बढ़ी। मुरई ने एक कनस्तर उठा पक्के फर्श पर पटक दिया। बहता कनस्तर उठा आग लगाने के लिये तेल छिड़का जाने लगा।

पण्डित जी ने समझाया—'हरे राम, नुक़सान काहे करते हो भैय्या!'

बीसियों कण्ठों से उत्तर मिला—'हरे, सारी सरकार का माल है, इसे फूंक ही देना चाहिये।'

कुछ ही मिनिट में छोटा सा स्टेशन लाल-पीली धुमैली ज्वालाओं का स्तूप सा बन गया। आस-पास के गाँवों से जयकारे लगाते गिरोह आ-आकर भीड़ में मिलने लगे। बढ़ती हुई भीड़ मन्थर गति से परन्तु अपने बल के विश्वास से आगे बढ़ी। रेल की पटरी और सड़क के बीच, बरसों से अडिग खड़े लोहे के मोटे खम्भे, जिन्हें यदि पशु भी सींग या पीठ से छू देते तो किसान सरकारी क्रोध की आशंका से काँप उठते थे, विशाल भीड़ के सामने कच्ची ऊख की भाँति कुड़मुड़ा कर गिरने लगे। वे खम्भे भीड़ के क्रोध का शिकार थे केवल इसलिये कि वे सरकारी सम्पत्ति थे। उनके गिर जाने से, रेल की पटरी उखड़ जाने से सरकार के असमर्थ हो जाने की नीति में और जनता की असुविधाओं का विचार होगा तो केवल शहर से आनेवाले दो एक चतुर व्यक्तियों को या पण्डित बंसीधर को।

उमड़ती भीड़ लावना के थाने की ओर चली। विशाल ब्रिटिश

साम्राज्य, जिसके विस्तार की सीमा सूर्य भगवान भी लाँघ नहीं पाते, की शक्ति का प्रतिनिधि बारह कोस में वही थाना था। ग्यारह सिपाही और एक दारोग़ाजी। चालीस हज़ार से अधिक प्रजा उन्हें अंग्रेज़ सम्राट का प्रतिनिधि मान कर सिर झुकाती चली आ रही थी। जय-जयकार करती, झण्डा फहराती भीड़ थाने की ओर बढ़ती चली। अपनी स्थिति के अधिकार से पण्डित जी भीड़ के मध्य में जनगण के मनोनीत नेता बने चले जा रहे थे।

दारोग़ा साहब ने धमकी दी कि गोली चला देंगे। विजय के उत्साह में बावली जनता ने कुरतों के बटन तोड़, सीना खोल दिया—'चलाओ गोली !'

बंदूक की धमकी से बावली भीड़ ईंट पत्थर उठा सामना करने के लिये तैयार हो गई। पण्डितजी ने समझाकर भीड़ को शान्त किया।

दूरदर्शी दारोग़ा साहब ने हँस कर कहा—'अरे हम तो आपही लोगों के नौकर हैं ! रैयत ही हमारी सरकार है, जिसका दिया खाते हैं। अंग्रेज़ कौन विलायत से रक़म ढोकर लाते हैं, साले....? और भरे ले जा रहे हैं उल्टे....!"

भीड़ने दारोग़ा और सिपाहियों को गांधी टोपी पहना दी और ज़ोर से बंदेमातरम का नारा लगा हिन्दू-मुसलमान की जय पुकारी ! पण्डितजी ने अपने हाथों थाने की इमारत पर लगे डण्डे पर क़ौमी झण्डा बांधा और देश की आज़ादी के लिये प्राण दे देने की प्रतिज्ञा की।

× × ×

तीन दिन तक बिल्हरा, मखुआ, लावना, और बिरूर में रामराज्य का आनंदोत्साह रहा। रैयत कचहरी के अपने झगड़े भूल गई, जैसे सबकी सब शिकायतें मिट गई हों। लगान की दुश्चिन्ता भुला, किसानों ने तेल में छुंकी अरहर की दाल में खटाई मिला कच-कचर

भात खाया। बासी रोटी से गुड़ खाया। पण्डितजी बिना किसी चुनाव के, बिना किसी नियुक्ति के इलाके के पंच कहिये, चौधरी कहिये, तहसीलदार, डिपटी, जो कहिये बन गये। सब ओर से उन्हें जैरामजी और रामजुहार होती। लोग आदर पहले भी करते थे परन्तु तब पैसे और दारोग़ा साहब से दोस्ती का दबदबा था। अब जैसे वे रैयत के अपने हों। आँखें बदल गईं। एक उत्साह और उमंग सब ओर थी।

चौथे दिन सुबह ही मखेरा और पतोली से तीन आदमी परेशानी की हालत में शरण ढूंढ़ते बिल्हरा पहुँचे। एक की बाँह में बंदूक की गोली का घाव था। उन्होंने बताया—'ज़िले से बड़ी भारी फ़ौज और पुलिस तोप बन्दूक लिये बग़ावत को दबाती चली आ रही है। गांधीजी की जय पुकारने, गांधी टोपी लगाने और कांग्रेस का झण्डा उठानेवाले सब लोग गिरफ़्तार हो रहे हैं।.........भारी-भारी जुर्माने हो रहे हैं।.... जहाँ बाग़ियों का पता नहीं चलता, सरकार गाँव में आग दे देती है। सिपाही बहू-बेटियों को बेइज़्ज़त कर रहे हैं। बड़े-बड़े किसानों की ज़मीन-जायदाद जब्त हो गई। बहुत जगह रियाया और फ़ौज में लड़ाई हुई; फ़ौज ने गोली चलाई।'

बिल्हरा में आतंक छा गया। ग़फ़ूरे और कानसिंह के चेहेरे पर भी झाँई फिर गई परन्तु उन्होंने सबके सामने खम ठोककर कहा—'सरौ चाहे सिर उतर जाय, दुश्मन के आगे सिर नहीं झुकायेंगे। जो अपने बाप की औलाद होगा, मर जायगा पर पीठ नहीं दिखायेगा।' वे अपने घर जा बल्लम और गड़ाँसा पैनाने लगे।

पण्डितजी ने भी सुना और हामी भरी परन्तु मनमें सोचते रहे 'सरकार से भिड़ना क्या खेल है?....मगर से बैर कर पानी में रहना? ससुरे नंगों का क्या है?....उनकी कौन इज़्ज़त है, उन्हें किसका डर? भले आदमी को डर ही डर है....।

चौथे दिन का चौथे पहर था। बिल्हरा के पास से गुज़रती गोरखपुर

की बजरीली सड़क पर लारियाँ ही लारियाँ चली आईं। यह लारियाँ दूसरी रंगबिरंगी, नित्य दिखाई देने वाली लारियों से भिन्न भूरी-भूरी, ख़ाकी-ख़ाकी रंग की थीं।

सड़क के किनारे चोर और दरोग़ा का खेल खेलते बच्चों ने गाँव में जा, भय से फैली आँखों से ख़बर दी—'सरकार आई हैं।'

गाँव से बाहर आ आशंकित प्रजा ने देखा—ख़ाकी मोटरें गोईंड़ की धरती में फ़सल को रौंदती चली आरही हैं। ऐसी मोटरें लोगों ने कभी देखी न थीं। लोहे की चादर से मढ़ी और उसमें मगरमच्छ की थूथनी सी बन्दूकें। बाहर निकली हुई रैयत का दिल बैठ गया। बहुएँ घर में जा छिपीं और बच्चे उनकी गोद में।

ख़ाकी वरदी पहने, भारी बूटों से धरती को कँपाते सिपाही कंधोंपर बन्दूकें लिये, गाँव में घुस आये। पीछे एक साहब लम्बा-लम्बा, पतला टोपके नीचे भी धूप की चकाचौंध से अधमुँदी आँखों से एक नज़र में सब कुछ देखता, दाँतों में दबे चुरट से हल्का-हल्का धुआँ छोड़ता आ रहा था। लावना के दरोग़ा साहब के आगे झुक-झुक कर बताते चले आ रहे थे। साहब के लाल-सफ़ेद चेहरे पर एक अजीब सी तिरस्कारपूर्ण मुस्कराहट थी, जैसी गडरिये के कुत्ते के मुखपर होती है, जब सैकड़ों भेड़ों का झुण्ड उसकी एक भौं सौं से त्रस्त होकर सिमिट जाता है।

× × ×

गाँव पल्टन से घिर गया, गाँव के उत्साही नौजवान, ग़फ़ूरा, मतई कानसिंह, जिन्होंने अंग्रेज़ी राज मिटाने और सुराज स्थापित करने में प्रमुख भाग लिया था, सनक गये। जरनैल साहब की कुर्सी गाँव के में बची पीपल के नीचे लग गई। तहसीलदार साहब अदब से सामने खड़े थे। दारोग़ा साहब थाने में सिपाहियों, चौकीदारों और पल्टनिया सिपाहियों को लिये बदमाशों को गिरफ़्तार कर रहे थे। मतई, गफ़ूरा और कानसिंह का कहीं पता न चला।

दरोगा साहब अपना दल लिये पण्डितजी की चौपाल पर पहुँचे। पण्डितजी ने शरीर की कम्पन वश में कर निगाहों में मुलाहिज़ा भरे दारोगा साहब की ओर देखा। दारोगा साहब नितान्त कर्यव्य निष्ठ थे; जैसे वे पण्डितजी को पहचानते ही नहीं! पण्डितजी को भी हिरासत में ले लिया गया।

कर्नैल साहब के सामने पहुँचते ही पण्डितजी ने झुककर सलाम किया। बचपन की पढ़ाई काम आई। अंग्रेज़ी में बोले—'हुजूर हन शरीफ़ आदमी हैं, सरकार को टैक्स देते हैं। हुजूर बदमाशों ने ज़बर-दस्ती हमारे घर पर बाग़ियों का झण्डा लगा दिया। हुजूर हमें मुआफ़ी मिले। हम बदमाशों का पता दे सकते हैं।'

साहब के चेहरे पर कोई परिवर्तन न आया। मुखसे चुरूट हटाये बिना उन्होंने हुकुम दिया—'बोलो।'

पण्डितजी सिपाहियों को साथ ले अपने अनाज के कोठे में गये और वहाँ ग़फ़ूरे, मतई और कानसिंह छिपे हुए मिले।

साहब के लिये गाँव से बाहर खेमा लग गया था। गाँव की दुर्गंध से उकता कर और अपनी उपस्थिति आवश्यक न जान, वे उठकर चले गयें। उनके चले जाने के पश्चात् दारोग़ा साहब शान्ति स्थापना की उचित व्यवस्था करने लगे।

पण्डितजी के सरकारी गवाह बनकर छूट जाने के उदाहरण से सभी लोग गवाही देने लगे परन्तु दारोग़ा साहब ने पण्डितजी के छोटे भाई रामधर और बड़े पुत्र गिरधारी को गिरफ़्तार कर लिया। उन्होंने सिपाहियों को आज्ञा दी कि ख़ास बदमाशों के अलावा शेष सब रैयत को दस-दस जूते लगाकर छोड़ दिया जाय!

रैयत को जूते लगाने से सिपाहियों का मनोविनोद अवश्य हुआ परन्तु इससे उनकी क्षुधा निवृत्ति न हुई। उनके भोजन की व्यवस्था के लिये दारोग़ा साहब ने हुकुम दिया—'दो बोरी आटा, दूसरी रसद

और एक कनस्तर घी पण्डित बंसीधर के यहाँ से ले लिया जाय !'

पण्डितजी के एतराज करने पर सूबेदार साहब ने एक सिपाही को दो जूते पण्डितजी के सिर पर लगाने का हुक्म दिया।

जूते खा पण्डितजी घर लौटने के लिये पीपल के तले से हट आये, परन्तु पहुँचे सीधे कर्नल साहब के ख़ेमे में।

अर्दली के हाथ में पाँच रुपये का नोट दे उन्होंने साहब को सलाम बोला।

मुँह में चुरूट दबाये साहब ने पूछा—'वेल !'

पण्डितजी ने अपनी शिकायत सुनाई—

'हुजूर, वफ़ादार रियाया के साथ ऐसा जुल्म हो रहा है ?'

'हूँ'—साहब ने उत्तर दिया और अर्दली को हुकुम दिया—'दारोगा को बोलो. इस आदमी के घरको तकलीफ़ नई होगा।'

और फिर सज्जनता के नाते पण्डितजी को अंग्रेज़ी में आश्वासन दिया—'सरकार का रोब (Prestige) क़ायम करने के लिये ऐसा भी करना पड़ता है। कोई बात नहीं है।····बग़ावत के परिणाम में बहुत कुछ होता है।'

अनुनय के स्वर में पण्डितजी ने दरख़्वास्त की—'हुजूर हम शरीफ़ खान्दानी (Respectable) हैं। हमारे खानदान ने सदा सरकार की खिदमत की है। हमें हजूर के हाथ से शराफ़त और वफ़ादारी की सनद मिल जाय ! हम से बदमाशों के जुर्म का हरजाना न लिया जाय !'

साहब पण्डितजी के चेहरे पर निगाह लगाये चुप रहे। उनकी आँखों और होठों पर अब भी वही मुस्कराहट थी। मेज़ से फ़ाउण्टेनपेन उठा उसे खोलते हुये उन्होंने कहा—'हम लिखेगा तुम हिन्दुस्तानी शरीफ़, वफ़ादार है।'

साहब ने खड़े-खड़े पुर्ज़े पर दो पंक्तियाँ लिख मुस्कराते हुए काग़ज़ पण्डितजी की ओर बढ़ाते हुये कहा—'अगर तुम हमारा मुल्क का आदमी होता, हम तुमको दग़ाबाज़ (Traitor) कहता और गोली मार देता।'

६

वॉन हिण्डनबर्ग

सुनामा गरमी की छुट्टियाँ बाहर बिता आई थी। तीन सप्ताह इलाहाबाद मायके में और एक मास आगरा ससुराल में। दो ही मास पश्चात फिर दुर्गापूजा की दो सप्ताह की छुट्टी आ गयी। यों स्कूल से छुट्टी का विचार भला ही लगा। छुट्टी जितनी भी हो अच्छी है। परन्तु फिर से इतनी जल्दी न ससुराल और न मायके ही जाने के विचार से उत्साह हुआ। दोनों ही स्थानों के अनुभव अभी मस्तिष्क में बहुत ताज़े थे। उन अनुभवों की स्मृति से उसका सिर उधेड़बुन में झुक जाता। उज्ज्वल तांबे की झलक लिये गेहुँए रंग पर चिन्ता की छाया आ जाती और पतले ओंठ भीतर की ओर खिंच जाते।

सुनामा ने सोचा, दो सप्ताह एकान्त और शान्ति में बितायेगी। स्कूल के दिनों में समय न मिलने से अनेक काम शेष थे। स्कूल के समय व्यस्तता से मधुमक्खियों के छत्ते की भाँति गूँजता रहनेवाला लड़कियों के स्कूल का बड़ा बंगला और उसका अहाता छुट्टी के समय एकान्त और शान्त हो जाता है; जैसे मेला समाप्त हो जाने पर मेले का स्थान नीरव और निर्जन हो जाता है। छुट्टी की घंटी बजने पर जब दसों श्रेणियों की लड़कियाँ और बच्चे एक साथ सब कमरों से निकल पड़ते, उनके पाँव से उड़ी धूल आदमी के कद तक उठ आती और फिर निर्जनता और शान्ति। सुनामा अपने कमरे की ओर लौटती, वैसे ही

अनुभव करती जैसे मंज़िल पर पहुँच कंधे से बोझ उतारकर मज़दूर करता है। छुट्टियों के पौने दो मास में बच्चों के पाँव से त्राण पा और चौमासे की वर्षा से पनपकर अहाते के लान मख़मली हरियाली से पुरे हुए थे। विशाल अहाते के एक ओर बने क्वाटरों में दो चपरासियों, एक माली और एक महरे के अतिरिक्त कोई न था।

स्कूल के बंगले में ही पिछवाड़े की ओर उसका कमरा था। आरम्भ में कमरे को सुनामा ने अपने विशेष ढंग और रुचि से सजाया था। अब कमरे के आयोजन की नवीनता समाप्त हो चुकी थी परन्तु उसका अपना व्यक्तित्व उसमें समा गया था। अभ्यास से वह उसके लिए उसी प्रकार सुविधाजनक बन चुका था जैसे किसी वस्तु के लिए बनाई गई डिबिया में उसका स्थान हो।

बी० टी० परीक्षा पास कर चौदह मास पूर्व सुनामा ने हिन्दू गर्ल्स स्कूल में मुख्याध्यापिका का काम करना स्वीकार किया था। उस समय भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा पर जापानी आक्रमण के कारण पश्चिम की ओर भाग आये लोगों के कारण युक्त प्रान्त के नगरों में खाली पड़े गोदाम और अस्तबल भी मकान करार दिये जाकर किराये पर उठ चुके थे। स्कूल कमेटी को सुनामा की आवश्यकता थी। कमेटी ने उसे आश्वासन दिया—यदि मकाम का प्रबन्ध करने में आपको कठिनाई होगी तो फिलहाल स्कूल की इमारत में ही निर्वाह योग्य स्थान का प्रबन्ध आपके लिए कर दिया जायगा। सुविधा होने पर आप अपने लिए अलग मकान का प्रबन्ध कर सकेंगी।

स्कूल की इमारत में निर्वाह योग्य कोठरी पाकर गुज़ारा करने का विचार सुनामा के लिए उत्साह जनक न था। परन्तु वह ससुराल से जान बचाने के लिये कहीं भी शरण पा सकने के लिए व्याकुल थी। वैधव्य के पश्चात् किसी तरह तीन बरस आगरे में बिता ससुराल से छुटकारा पाने के लिए ही उसने ट्रेनिंग कालेज में भरती हो इलाहाबाद मायके

में रहने की आयोजना की थी। दो वर्ष तक मायके में रहते समय जाने कितनी बेर उसके व्याकुल प्राण अवरुद्ध निश्वासों में आर्तनाद कर उठे—एक बेर मायके के लिए बेगानी हो जाने पर स्त्री के लिए फिर मायका अपना नहीं हो सकता, जैसे वृक्ष से एक बेर टूट गया फल फिर से उसमें नहीं लग सकता। और ससुराल में अब उसके लिए क्या शेष था ? ससुराल से उसके अधिकार और प्रयोजन का सम्बन्ध टूट चुका था, जैसे बेल से फल को मिलाये रहनेवाली टहनी टूट जाने पर फल खेत में पड़ा रहने से केवल सड़ता है, बढ़ता नहीं।

वैधव्य के आघात से तीन वर्ष तक मानसिक मृत्यु की अवस्था में रह और मृत्यु की कामना कर भी जब वह मर न सकी तो यथार्थ की उपेक्षा से परास्त हो उसने जीवित रहने की ओर ध्यान दिया। बी० टी० की पढ़ाई इसी निश्चय का फल थी। पढ़ाई समाप्त कर उसी पुराने संसार में, पुराने शरीर से ही उसने नयी भावना ले प्रवेश किया।

सुनामा का संसार पारस्परिक विरोधों से भरा था। जैसे बिजली का मोटर स्थिर रहकर भी अत्यन्त गतिशील होता है ! 'हां' के रूप में प्रवृत्ति और 'न' के रूप में संस्कार बिजली के घन (पाज़िटिव) और ऋण (नेगेटिव) तारों की भाँति उसके मस्तिष्क में विचारों के पहिये को अत्यन्त तीव्र गति से घुमाये रहते। जैसे बिजली का मोटर स्वयं स्थिर रहकर भी अपने प्रभाव से दूसरी वस्तुओं को गतिमान कर देता है, वैसे ही सुनामा का प्रभाव उसके चारों ओर होता। इच्छा न होने पर भी, उसके आशंकित रहने पर भी आदर और प्रशंसा का एक वातावरण उसके चारों ओर कुहासे के रूप में उठ खड़ा होता और फिर अपवाद के ओस की बूँदों के रूप में जमकर अवसाद और त्रास उत्पन्न करने लगता। यह विरोध उसके रूप और वास्तविक स्थिति में भी था। अव्यय यौवन की स्फूर्ति सौम्यता से नियन्त्रित होकर भी अंगों पर लहराती थी। उसकी सादगी सुरुचि से परिष्कृत हो शृङ्गार से अधिक

चुटीली बन जाती। सीधी मांग के नीचे बेंदी से रिक्त माथा और भी विशाल हो उठता। उसके सौजन्य से आग्रह का भाव झलकता-उसकी आशंका और सतर्कता से संकोच। उस चारु रूप और सौजन्यता के आवरण के भीतर वैधव्य का दारुण अभिशाप ढका था।

उसके व्यक्तित्व के आकर्षण के फैलाव और आत्मरक्षा के संकोच में द्वन्द्व से ही सुनामा का जीवन-चक्र गतिशील था। वह गति अन्तर-मुखी थी। इसलिए उसका अपना व्यक्तित्व ही उस गति का केन्द्र था। हिन्दू गर्लस स्कूल की मुख्याध्यापिका की नौकरी में उसने अपने स्वतन्त्र जीवनचक्र के लिए धुरी पायी।

× × ×

दुर्गापूजा की छुट्टियों का आरम्भ विश्राम और शान्ति की भावना से हुआ। क्वार बीत रहा था। पिछड़ी हुई वर्षा अपने अरमान पूरे कर रही थी। सुरमई घटाओं से अँधेरा छा जाता। पहर-पहर की झड़ी लग जाती। स्कूल के कमरों में अँधेरा हो जाने से सुनामा को झुँझलाहट होती, शीत-सा अनुभव होने लगता। चौमासे की धूप और उमस के स्थान में वह शीत सुनामा को भला लगता। परन्तु स्कूल के चपरासी कन्हाई और माली 'बुड़ो' चिन्ता से आकाश की ओर मुख उठाकर कहते—'जाने क्या बसी है उनके मनमें?........खेती सब सत्यानास हो गयी!' अपरिसीम, रहस्यमय शक्ति के प्रति क्षुद्र मानव का यह आत्मसमर्पण सुनामा के मन में सहानुभूति की चुटकी-सी ले जाता। उसका अपना जीवन भी उसी शक्ति का खिलवाड़ होकर रह गया था।

× × ×

लट्ठबन्द चौकसी करते चपरासियों और माली की रक्षा में सुनामा ने रात बरामदे में बिताई। कुछ विलम्ब से उठ, अन्तिम तारों की विदाई के समय मसहरी छोड़ वह रात की ठण्डक से शीतल भूमि पर उतर आयी। सुलक्षण गृहस्थ के नियम से मेहतरानी 'बूलो' स्कूल का

अहाता तारों की छाँव में ही बुहार रही थी। जमीन छूकर बूलो ने उसे सलाम और आसीस दी। सुनामा को मास्टरनी जान कर भी वह उसे 'रानी साहिबा' कहकर सम्बोधन करती थी। यह उसके व्यक्तिगत आदर-अनुराग की अभिव्यक्ति थी। ओस से बैठी धूल पर झाड़ू से लहरें बनाती बूलो पीछे की ओर हटती जा रही थी।

शीतल वायु से सुनामा ने स्फूर्ति पाई, पक्षियों की प्रथम चहचहा-हट सुन उसकी दृष्टि आकाश की ओर गयी। आकाश निर्मल था। साड़ियाँ धोई जा सकेंगी! और कितनी ही ऐसी ही बातें सहसा उसके मस्तिष्क में फिर गयीं।

सिर धो भीगे केश पीठ पर फैलाये जब सुनामा गुसलखाने से निकली, आकाश में मेघ घिर आये थे। एक निराशा-सी अनुभव की। नौकर चाय-नाश्ता ला रहा है, इस प्रतीक्षा में वह बराम्दे में कुर्सी पर बैठ गई। यूरोप के युद्ध के कारण कुछ बेबीवूल (बच्चों के लिए ऊन) विशेष कठिनाई से प्राप्त की हुई थी। बहन के नये बच्चे के लिए उस ऊन का अधबुना स्वेटर सिलाइयों पर ऊँगलियों में था।

सामने से बूढ़ा माली टटके ताज़े फूलों के दो गुलदस्ते दोनों हाथों में लिये आता दिखाई दिया। माली को देख एक हल्की मुसकान सुनामा के मुख पर आ जाती थी। चोटी से एड़ी तक उसकी हर बात में विशेषता थी। बुढ़ापे की ढिलाई के बावजूद ऊँचा और चौड़ा कद, खूब खुला सीना, रूखे बड़े-बड़े हाथ पाँव। दाँये घुटने में कुछ लँगड़ा-हट होने से वह धड़ को पीछे फेंककर चलता। चिकनी चाँद के ऊसर पर कहीं-कहीं सूखे काँस की फुनगियों की तरह श्वेत केश थे। सिर वैज्ञानिकों और दार्शनिकों की भाँति बड़ा। माथे पर गहन उत्तर-दायित्व के बोझ से सदा ही त्योरियाँ बनी रहतीं। चेहरा ज़ंग लगे लोहे की भाँति गेरुआ झलक लिये काला। चौड़े चेहरे पर लम्बी नाक के नीचे बिलकुल श्वेत तराशी हुई लम्बी मूँछे, छतरी की गोलाइयों जैसी

ठोड़ी की ओर घूमी हुई। बात करते समय लंगड़ाहट के कारण धड़ का बोझ तौलने के लिए रीढ़ पीछे झुकने से सीना और तन जाता और उस पर बार-बार मूँछों पर हाथ फेरते रहना। चौड़े कंधों पर रेलवे के पाइण्टमैन का नीली ज़ीन का कुरता यों पड़ा रहता जैसे दसहरे के रावण के शरीर पर काग़ज़ के कपड़े। नीचे खुदरंग हो गई धोती का फेंटा घुटने तक कसा हुआ।

माली का नाम न पुकारा जाता था। मेहतरानी से ले हेड मास्टरनी तक सब आयु के सम्मान से उन्हें 'बुढ़ौ' पुकारते थे। इस सम्मान के कारण बुढ़ौ का मिज़ाज़ और तुनक था। युद्ध की मँहगाई के कारण दूसरे बंगलों में माली २५)-३०) पा रहे थे, परन्तु बुढ़ौ अब भी १६) पर जमे थे। इसमें से भी ४) सुनामा की सिफ़ारिश से तरक्की का फल था। बुढ़ौ की इस कृपा के परिणामस्वरूप स्कूल पर उनका अधिकार भी कम न था। दिन में दो एक बेर छोड़ जाने की धमकी दे देते। सुनामा को सुनता पाते तो कहते, अरे जानकार मालिन को काम की क्या कमी है? 'गन फटरी' (गन फैक्टरी) में माली ४०)-५०) पा रहे हैं। हुज़ूर बीबी जी के कदमों की बदौलत पड़े हैं।'

स्कूल के चपरासी कन्हाई और लखन, महरा और मेहतरानी बुढ़ौ से चुटकी लेने से बाज़ न आते—'बुढ़ौ लाम पर काहे नहीं चले जाते। अब बूढ़े भी भरती हो रहे हैं। फौज में बूढ़ों को दूध-भात मिलता है।'

बुढ़ौ हाथ में खुरपी साधे तन जाते—'हम सब का खेद देऊब! मुला इस्कूल के लिये आदमिन की कमी नहीं है बीबी जी के इकबाल से!' उनकी वह अदा सेना को हुकुम देते कमाण्डिंग, आफ़िसर से कम न होती। सुनामा यह सब सुनती और उसके अन्तरतम से आत्मीयता की गुदगुदी उठ आती! उसके मुँदे पतले ओठों पर आ जाता—'वॉन हिण्डनबर्ग!'

स्कूल के सेक्रेटरी, सेक्रेटरियेट के अकाउण्टेण्ट मिस्टर भटनागर ने

एक दिन बुढ़ौ के तनकर सलाम करने के जवाब में मुस्कराहट दबाकर उत्तर दिया था—'थैंक्यू वॉन हिण्डनबर्ग !' उस स्मृति से सुनामा के ओठों पर बार-बार मुसकान आ जाती ।

बुढ़ौ सुनामा के कमरे में नित्य ताज़े फूल लगा जाते थे। यह फूल लगाना सुनामा के पद के विचार नहीं, बुढ़ौ के अपने अधिकार से था। यों कोई अध्यापिका केशों में फूल खोंसने के लिये किसी फूल की ओर हाथ बढ़ाये तो वे एक पहर बड़बड़ाते रहते। परन्तु सुनामा के फूलदान के लिये वे अपने भाईचारे के नाते, जाने कहाँ-कहाँ से नायाब फूल लाकर हुजूर बीबी जी के यहाँ सजा देते। फूलदान में फूल न अटने पर लोटा गिलास जो मिल जाता, फूलदान बन जाता।

बुढ़ौ का फूल सजाने का कायदा सुनामा की आधुनिक सुरुचि के अनुकूल न था। आरम्भ में दो एक बेर उसने बुढ़ौ के लगाये फूलों को उठा ढंग से लगा दिया—गुलाब एक में, पिटूनिया दूसरे फूलदान में; लम्बी-लम्बी टहनियाँ स्वाभाविक गति से बलखाती हुई और फैली हुईं। परन्तु बुढ़ौ ने फूलदान में सब फूल एक साथ सटा देने के अपने ढंग में परिवर्तन की आवश्यकता न समझी। एक दिन सुबह एक फूलदान खाली देख बुढ़ौ ने क्रुद्ध मुद्रा में पहाड़ी नौकर तेजू को सम्बोधन किया—'ए ! ए फूल को उचासिस रहा ?'

इस डाँट से सुनामा का मन पुलक उठा। बुढ़ौ की पीठ पीछे से ओठों पर ऊँगली रख उसने पहाड़ी नौकर को चुप रहने का संकेत कर दिया। वे फूल स्वयं सुनामा ने ही मिलने आये एक सज्जन के बालक को थमा दिये थे। तब से वॉन हिण्डनबर्ग के हाथों सजाये गये उन फूलदानों में गुलाब के साथ गेंदा और सूरजमुखी विश्राम करते हुए शोभा बढ़ाते रहते और सुनामा को वह खटकता भी नहीं।

चौदह मास के संक्षिप्त समय में ही बुढ़ौ और सुनामा का सम्बन्ध गूढ़ कर देनेवाली अनेक घटनायें हो गयीं। पूस का रोमांचकारी शीत

बुद्धौ एक पुराने सूती कम्बल में काट रहे थे। उनकी फैली हुई गर्वित विशाल देह सोंठ की तरह सिकुड़ रही थी। सुनामा की दृष्टि बेर-बेर उस ओर जाती पर कुछ कह न पाती। बहुत साहसकर एक दिन बोली—'बुद्धौ इस बरस बड़ा जाड़ा है।'

'क्या बताई हुजूर, ऐसा जाड़ा पचपन बरस की उमिर में नहीं देखा।'–बुद्धौ ने समर्थन किया।

'एक कम्बल है, बुद्धौ। भाई, ओढ़ा हुआ है। ऐसे ही धरा है। काम आ सके तो········'–वह चुप रह गयी।

'अरे हुजूर का ओड़े-पहरे में क्या ?'—एतराज अस्वीकार करने के लिए मूंड हिलाते हुए बुद्धौ ने पाँव बदला।

सुनामा तुरन्त भीतर गयी और कम्बल लाकर बुद्धौ की बाँह पर रख दिया। बुद्धौ कुछ बोल नहीं पाये। और फिर तीन दिन बाद बुद्धौ को एक चीथड़े से कान बाँधे देख उसने एक तौलिया उनकी ओर बढ़ा दिया।

स्कूल के पिछवाड़े बुद्धौ के अपने हाथ से लगाये कटहल के पेड़ में पहला फल लगा था। बुद्धौ सुबह शाम और दिन भर में तीन-चार बेर उसे देख लेते। किसी को सुनता पाते तो हाथ की मुट्ठी में खुरपी भींच कर खबरदार कर देते—'जो एका हाथ लगाई हम ओका हाथ काट डारी !'

छोटा चपरासी चुटकी लेता—'फलां-फलां आदमी कटहल की ओर देख रहे थे····। भई मज़ा है तो नरम-नरम कटहल खाने में ! क्यों कन्हाई दादा, कटहल में क्या मसाला पड़ता है ?'

बुद्धौ बौखला जाते और हाथ, गोड़ और सिर काटने की ललकार प्रायः सुनामा के कान में पड़ती रहती। वह मुसकान से ओठ दबा कर रह जाती।

बुद्धौ प्रायः ही उस वृक्ष के वंश का चर्चा करते; बर्दवान के असली

कटहल का बीज है। इसका फल बीस-पचीस सेर से कम न होगा। परन्तु बुड़ौ अपनी आशंका दमन न कर पाये। फल प्रायः सेर भर ही हो पाया था कि एक सुबह दोनों हाथों में फल थामे उसे उन्होंने हुजूर बीबी जी के सामने पेश कर दिया।

सुनामा ने सोचा, जाने इतने दिन बुड़ौ ने कैसे सब्र किया होगा ? बोली—'हाय, अभी से काहे तोड़ लिया ?···बढ़ने देते !'

बुड़ौ ने समझाया—'बुरे लोगन का क्या ठिकाना ? पहला फल चोरी न जाया चाही। इससे पेड़ कनिया जात है।'

'बड़ा बढ़िया कटहल है, बुड़ौ। तुम अपने यहाँ बनाओ न !'

अपना भारी सिर हिला दुरुस्त पाँव पर धड़ को तोल बुड़ौ ने गदगद स्वर में उत्तर दिया—'ऐसा कैसे हो सकत है, हुजूर। हम तो आप ही के लिए'·········और कुछ वे कह न पाये।

उस सन्ध्या सुनामा ने स्वयं चौके में जा कटहल बनाया और बुड़ौ की ज्याफ़त हुई। कटहल की तरकारी सब लोगों में बाँटी गयी।

देश में जैसे अन्न का अकाल पड़ा, उससे भयंकर स्थिति हो गयी कपड़े की। वस्त्र के अभाव में लाज ढाँकने में असमर्थ हो भले घरों की स्त्रियों के आत्महत्या करने और स्कूल की लड़कियों के परीक्षा देने न जा सकने के समाचार पत्रों में छपने लगे। सुनामा भी सफ़ेद वायल की धोतियों के लिये तरस गयी। गरमी और बरसात की उमस में भी रेशमी साड़ियाँ निकाल कर पहननी पड़ रही थीं। उन साड़ियों के पहरने में झेंप भी होती, परन्तु लाचारी थी। सुनामा ने साड़ियों की ज़री किनारी छुटा, जहाँ तक बना, सादा बना लिया था।

बुड़ौ अख़बार और ब्लैक-मार्केट कुछ नहीं जानते थे। इतना जानते थे कि धोती कहीं नहीं मिलती। धोती में चिन्दी और गाँठ लगते-लगते वह गाँठ और चिन्दी सहारने लायक नहीं रही। सीधे हुजूर बीबी जी से तो नहीं परन्तु, उन्हें कमरे के भीतर जान, पहाड़ी नौकर तेजू

और चपरासी लखन को सुनाकर बुद्धौ बोले—'अब बीबी जी हम का धोती न दे हैं तो हम उनका धोती उठा लेबे !'

लखन ने टुचकारा दिया—'बुद्धौ रेशमी साड़ी पहरिहो हो ?'

सुनामा भीतर सन्ध्या की चाय पी पान लगा रही थी। ओठों पर मुसकराहट आ गयी। पान मुँह में रख वह बाहर आयी, बोली—'बुद्धौ क्या करें, मर्दानी धोती तो है नहीं। चौड़े किनारे की पहरोगे ?

बुद्धौ हाथ में खुरपी सम्भाले लंगड़ाते चले जा रहे थे। पलट कर नहीं देखा, कहते गये—'तौ फिर हम का करी ?'

× × ×

दुर्गा पूजा की छुट्टियों के पहले दिन प्रातः फूलदानों में फूल सजा बुद्धौ सुनामा के सामने आ खड़े हुए। स्कूल के नौकरों से सुनामा सिर नहीं ढँकती थी, रातदिन का साथ था। परन्तु बुद्धौ को सामने खड़ा देख किसी संस्कारवश साड़ी का आँचल भीगे केशों पर रख लिया।

बुद्धौ सिर झुकाये काठ सी खुश्क उँगलियों को परस्पर घिसते हुए बोले—'हुजूर बीबी जी, हमहु दिहात जाइब। हमहु का दुई हपता की छुट्टी मिले।'

'काहे बुद्धौ, क्या करोगे जाकर ?' सुनामा ने प्रभात के स्नान की ताज़गी लिये अपने विशाल नेत्र बुद्धौ की ओर उठा कर पूछा।

सही पाँव पर अपना सीना तौल बुद्धौ ने अपने पीले नेत्र छत की ओर उठा लिये—'हुजूर, लखन कहित हैं आपहू ईलाहाबाद जाय रही हैं। हमका हियाँ नीक नहीं लागत !'

सुनामा के हृदय का रक्त चेहरे पर उछल आया—'नहीं बुद्धौ, हम कहाँ जा रही हैं········? हम तो यहीं हैं।' उसके नेत्र हाथ की बुनाई पर झुक गये।'

बुद्धौ ने पाँव बदला और आश्वासन से उत्तर दिया—'तौ फिर ठीक है, हुजूर।····अफ़सर न रहे तो हम का नीक नहीं लागत। गरमी

की छुट्टी में आपहु चली गई रहीं। हमका बहुत अकरासा लागत रहा।'

सुनामा की दृष्टि बुनाई में और गहरी गड़ गयी। उसने बात बदली—'बुढ़ो, जाड़े के नये फूल नहीं लगाये ?'

× × ×

सुनामा इलाहाबाद और आगरा पीछे छोड़ आयी थी। परन्तु प्राणों के पीछे लगा जीवन का द्वन्द्व साथ ही आया। सेक्रेटरी साहब आदर से पेश आते थे और फिर बुरा मान गये। उसने मन में कहा—मैं क्या करूँ ?········मेरी बला से ?'

सेक्रेटरी मिस्टर भटनागर की नाराज़गी का कारण छिपा न था। प्रबन्ध कमेटी के प्रधान लाला विशननारायण के लड़के के विवाह की पार्टी में सुनामा गयी थी। सेक्रेटरी साहब ने भी उसे अपने यहाँ होली की पार्टी में निमन्त्रित किया। वह जा न सकी। तब से दो-तीन बच्चों के संरक्षकों ने स्कूल में प्रबन्ध की ख़राबी की शिकायतें लिख भेजीं। पहले सुनामा झुंझला कर रह गयी और फिर झेंपने लगी।

दुर्गापूजा की छुट्टियों के पहले ही, रविवार की सन्ध्या को प्रबन्ध कमेठी की बैठक हुई। कमेटी में प्रश्न आया कि पिछले सप्ताह 'अ' और 'ब' श्रेणी की पढ़ाई बिलकुल नहीं हुई। वर्षा के कारण बच्चों को तीन दफ़े घर लौट जाना पड़ा।

सुनामा ने उत्तर दिया—'उनके लिये इमारत में स्थान नहीं है। सब बच्चे किसी एक कमरे में बैठ नहीं पाते। मौसम साफ़ रहने पर तो बच्चों को वृक्षों के नीचे बैठाया जा सकता है। वर्षा के समय उपाय नहीं। इन श्रेणियों में अधिक बच्चे न लिये जायँ तो अच्छा है।'

कमेटी के दूसरे मेम्बरों को सम्बोधनकर सेक्रेटरी साहब बोले—'इमारत के दो कमरे हेडमिस्ट्रेस के पास हैं। यह कमरे कुछ समय के लिए दिये गये थे कि वे अपने लिये मकान का प्रबन्ध कर लें। अब एक वर्ष से अधिक समय हो गया है।'

सुनामा के हृदय पर अपमान के घनकी चोट पड़ी। तिलमिलाकर रह गयी। रायबहादुर संतराम ने कहा—'ठीक है, परन्तु शहर में कहीं बालिश्त भर जगह खाली नहीं। बच्चों की संख्या कम करना ही ठीक है।'

स्कूल का हिसाब अ डिटर से पास कराना ज़रूरी था। दुर्गापूजा के अवकाश में सेक्रेटरी साहब ने रजिस्टरों का मुआइना आरम्भ किया। कभी वे रजिस्टर मँगवा भेजते। कभी स्वयं स्कूल में आते और कभी हेडमिस्ट्रेस को बुलवा भेजते। बस चलता तो सुनामा इनकार कर देती परन्तु नौकर थी—विवश थी।

बुढ़ौ जा कर रिक्शा लाये और सुनामा सेक्रेटरी साहब के यहाँ गयी। लौटी तो सूर्यास्त हो चुका था। चेहरा ऐसे भर रहा था कि आँखें झड़ पड़ेंगी। रिक्शा स्कूल के अहाते में घूमा तो बुढ़ौ फाटक पर बैठे सुरती मलते दिखाई दिये—जैसे प्रतीक्षा में हों परन्तु सुनामा बुलकार न सकी।

रिक्शा से उतर सुनामा बरामदे में खड़ी बटुए में से रेज़गारी ढूँढ़ रिक्शा का भाड़ा चुका रही थी। इतने में बुढ़ौ फाटक से बरामदे तक आ पहुँचे। सुनामा को अब भी बिन बोले जाते देख बुढ़ौ बोले—'बड़ी, अबेर हो गयी हुज़ूर बीबी जी ?'

'यह सेक्रेटरी प्राण लेगा और क्या ?'—झुँझलाकर सुनामा भीतर जा पलंग पर पड़ गयी। उसका मस्तिष्क आर्मेचर की तरह घूम रहा था:—लानत है ऐसी नौकरी पर। पर आगरे और इलाहाबाद में ही उसके लिए कहाँ शरण है ?

बुढ़ौ साँझ की रोटी भी सुबह ही सेंक लेते थे। साँझ के लिए प्याज़ की चटनी और बाँट ली थी। उसी से रोटी चूर कर कौर निगलने को थे कि दीवार के दूसरी ओर क्वार्टर में कन्हाई और लखन की बातचीत सुनाई दी। यों बुढ़ौ कम सुन पाते थे। कम सुन पाने से बीसियों

झंझटों से बचे रहते। परन्तु मतलब की बात या चुपके से कही बात पकड़ लेने में उनके कान बहुत तेज़ थे।

लखन ने कहा—'का महतो! बड़ी बीबी अभी लौटी हैं सेक्रेटरी साहब के यहाँ से। रोई-सी जान पड़ रही थीं।'

कन्हाई के मुख में रोटी का ग्रास था। उलझे हुए स्वर में उसने उत्तर दिया—'सेक्रेट्री बड़े खिलाड़ी हैं। पीछे पड़े हैं बड़ी बीबी के। पहले तो बीबी ऐंठी। अब रुक्का आता है तो दौड़ी जाती हैं। अरे भाई, अफ़सर हैं, मन चाहे घर बुला लें, मन चाहे यहाँ आ जायँ!'—कन्हाई और लखन में देर तक बात चलती रही। बुड्ढे सुनते रहे जैसे घात ले रहे हों।

बुढ़ौ की थरिया की रोटी पेट में न जा सकी। बहुत देर वैसे ही बैठे रहे और फिर रोटी उठा एक पेड़ की जड़ पर रख दी कि दिन चढ़े कुत्ता खा लेगा।

रात में दोनों चपरासी, मेहरा और माली बारी-बारी से पहरा देते थे। जिसका पहरा समाप्त होता, दूसरे को जगा देता। बुड्ढे का पहरा बारी से चौथे पहर का था। अपनी खटिया उन्होंने रोज़ से कुछ आगे, बरामदे की ओर बढ़ा कर डाली की बीबी जी का बरामदा दीखता रहे। साथ में लठिया लेकर लेटे। रात भर आँख नहीं लगी, जैसे किसी आशंका में हों। दिन चढ़े बीबी जी के यहाँ फूल देने गये तो वे गुसलखाने में थीं। मन बहुत खिन्न रहा। अभ्यास वश रोटी सेकी, दाल भी बनाई पर खाते न बनी। सुनामा के बरामदे की ओर कई बेर दृष्टि गयी। वह छोटी सी मेज़ पर बड़े-बड़े रजिस्टर फैलाये उनमें दृष्टि गड़ाये थी....बहुत उदास।

चौथे पहर सेक्रेटरी साहब की छोटी-सी मोटर स्कूल के अहाते में आयी और हेडमास्टरनी के दफ्तर के सामने आकर रुकी। कन्हाई सिर पर टोपी सम्भालता दौड़ा आया।

'हेडमिस्ट्रेस को दफ़्तर में बुलाओ !'—भटनागर साहब ने हुकुम दिया।

सन्देश पा सुनामा मुसी हुई साड़ी बदल, सिर में कंघी कर, कन्हाई से रजिस्टर उठवा दफ़्तर की ओर चली। बग़ल के बरामदे से सामने की ओर घूमते ही उसके कदम उठ न सके :—

सेक्रेटरी साहब के सामने कंधे पर पहरा देने की लम्बी लाठी लिये बुढ़ौ अपने सही पाँव पर उचक रहे थे। दायें हाथ की उँगली दिखाकर वे ललकार रहे थे—'ये मुटरी-उटरी सब चूर कर देब। ई हाता में कदम रखियो ना ! सब अपसरी झार देब·······!'

सेक्रेटरी साहब का चेहरा बिलकुल रक्तहीन था। आँखें भय और विस्मय से फैल रही थीं। सुनामा को स्वयं काठ मार गया। कन्हाई तुरंत आगे बढ़ा। भटनागर साहब को आड़ में ले बुढ़ौ की लाठी उसने अपने हाथ में ले ली। लखन और मेहरा भी माजरा देख आ पहुँचे।

विपत्ति से रक्षा का श्वास ले सुनामा आगे बढ़ी और बड़ी कठिनता से कह पायी—'क्या बात ?'

बुढ़ौ बाहें फेंकते, बकते, लंगड़ाहट से उचकते अपनी कोठरी की ओर चले गये।

निर्भय हो सेक्रेटरी साहब ने अंग्रेज़ी में सुनामा को सम्बोधन किया—'क्या यह आदमी पागल है ? पहले भी कभी ऐसा व्यवहार किया है ?'

—'नहीं तो ! कभी देखा नहीं·······। किसी ने कहा भी नहीं। गम्भीर और जिम्मेवार आदमी था।'

सेक्रेटरी साहब पतलून की जेब में हाथ डाले अपने जूतों की नोक की ओर देखते रहे। दृष्टि झुकाये ही बोले—'हो सकता है·······लेकिन बड़ी ख़तरनाक बात है। लड़कियों और बच्चों का मामला है। आप इसे फ़ौरन डिसमिस करके अहाते से बाहर निकलवा दीजिये।' उन्होंने कन्हाई की ओर देखा—'सुना ?'

अपनी बात चपरासियों और मेहरे को समझाने के के लिये भटनागर साहब ने हिन्दी में दोहराया—'खतरे को रखना ठीक नहीं। अभी निकाल दीजिये। ज़रूरत हो, थाने में रिपोर्ट कर पुलिस बुलवा लीजिये। मैं भी थाने में फ़ोन कर दूँगा।' रजिस्टर देखने का उत्साह सेक्रेटरी साहब को न रहा। मोटर में बैठ वे तुरंत लौट गये।

सुनामा के पाँव काँप रहे थे। दफ़्तर में जा कुर्सी पर बैठ गयी। कोहनी मेज़ पर टिकी थी और हथेली पर ठोड़ी। दोनों चपरासी आज्ञा की प्रतीक्षा में पीछे खड़े थे। सुनामा का रोम-रोम काँप रहा था। मुख से शब्द निकलना असम्भव था। पचीस मिनट गुज़र गये।

कन्हाई बोला—'हुजूर क्या हुकुम है ?'

सुनाम निश्चय न कर पाई थी, वह माली को निकाल दे या स्वयं चली जाय ? उस कठिन द्वन्द्व में भी आतंकित कल्पना दूर देश घूम आयी—कहीं दूर, हरेभरे स्वतन्त्र दिहात में, वह और बुद्धौ........! बुद्धौ खेत सम्भालने जायँ और वह रोटी सेक कर प्रतीक्षा करे !

कन्हाई के टोकने से सुनामा ने अपनी निर्बलता झुँझलाहट में छिपाई—'क्या है ?'

'हुजूर माली के वास्ते....सेक्टेरी साहब कहेन.... !

सुनामा हिल न सकी। जान पड़ा, सिर दरद से फट रहा है। न जाने कितने मिनट बीत गये। चपरासी और मेहरा खड़े रहे। थककर अनेक वेर उन लोगों ने पाँव बदले, जम्हाई ली। सुनामा की तन्द्रा भंग न हुई। कन्हाई ने फिर टोका—'हुजूर !'

सिर दर्द से सुनामा के नेत्र बिलकुल रक्त हो गये थे। पूर्ण संयम से अपने आपको वश कर उसने कठोर स्वर में उत्तर दिया—'क्यों बार-बार सिर खाते हो !....कह तो दिया एक बार !....जाओ निकाल दो !'

'हुजूर उसकी तनख़ा........'—कन्हाई ने साहस किया।

झपाटे से मेज का ड्राअर खींच सुनामा ने दस-दस के दो नोट निकाल फर्श पर फेंक दिये और सब को धमकाया—'जाओ यहाँ से !'

सिर आँचल में लपेट उसने मेज़ पर रख दिया। जान न पड़ा कितना समय बीत गया। वैसी ही मूर्छा जैसी वैधव्य के प्रथम आघात से आगयी थी। सुनाई दिया—'हुजूर, माली नमस्ते करने को खड़े हैं।' कुछ ठीक से समझ भी न पायी और आँसू से भीगे आँचल में लिपटा सिर उठा सकना भी सम्भव न था। भीतर दबी आग भड़क उठी—'जाओ यहाँ से !'

कुछ मिनट बाद सुनामा संभली। रुलाई के वेग ने उसे अवश कर दिया। अविरल आँसुओं को रोकना सम्भव न था और आँसू भरा मुख स्कूल के नौकरों को दिखाना भी सम्भव न था। परन्तु बुढ़ौ जा रहे थे·······।

रह न सकी। सिर उठाकर खिड़की से झाँका। आँसू भरी पलकों में से दिखाई दिया—वही नीला कुरता पहरे, बगल में हलका बुगचा दबाये, लाठी टेकते, लंगड़ाते बुढ़ौ फाटक से निकल रहे थे। सुनामा का मन हुआ चीख़ उठे–'बुढ़ौ, ठहरो !'

परन्तु मुख्याध्यापिका के संयम ने ओठ खुलने न दिये। उसके हृदय ने आह भरी–वॉन हिण्डनबर्ग ! और आँसू भरी पलकों के सामने लंगड़े बुढ़ौ वॉन हिण्डनबर्ग से कहीं अधिक गरिमामय जान पड़े···· वे सुनामा के हृदय की कितनी गरिमा लिये चले जा रहे थे।

७

भाग्य चक्र—

विधाता के यहाँ भाग्य के कारखाने में संख्यातीत प्राणियों के भाग्य-चक्र अपने दाँतें एक दूसरे में फँसा अनेक दिशाओं में चला करते हैं। कौन चक्र किस चक्र को कब और क्यों किस ओर चला कर प्राणियों को इस संसार में ऊपर, नीचे, दाँयें, बाँये फेंक देता है; कब किसी को ऊपर उठा देता है या किसी की अस्थि-मज्जा कुचल देता है, कहना कठिन है। प्राणी बेचारा कुछ जान या समझ भी नहीं पाता।

नन्दनसिंह कलकत्ता में भवानीपुर के समीप कालीपाड़ा मुहल्ले में, बंगाली परिवारों से भरे एक बड़े मकान में, दुमञ्जिले की एक कोठरी और बराम्दा किराये पर लेकर रहता था। कलकत्ते में पञ्जाबियों के प्रति विशेष श्रद्धा नहीं है; उन्हें बल्कि कुछ आशङ्का से ही देखा जाता है। पर नन्दनसिंह की बात दूसरी थी, या भाग्य के कुछ चक्रों को यों ही घूमना था।

हुआ यह कि मुहल्ले में एक पान-बीड़ी की दूकान थी। पनवाड़ी की असावधानी से या उसका भाग्यचक्र यों घूम गया; गाहकों को बीड़ी सुलगाने की सुविधा के लिये, दुकान की काठ की छत से सुलगा कर लटकाई नारियल की रस्सी से किसी तरह आग लग गई। अगल-बगल के दो मकानों को लपेट कर आग ने विराट रूप धारण कर लिया।

आगके विभ्राट से बँगाली भद्र परिवारों में 'सर्वनाश होलो!' का

चीत्कार मच गया। समीप ही बढ़ई का काम करने वाले और टैक्सी और बस के ड्राइवर पञ्जाबी लोग कोठरियों में रहते थे। चीत्कार के उस वीभत्स काण्ड में पञ्जाबियों ने दौड़ कर आग बुझा दी। आग का संकट टल जाने पर उसकी चर्चा करते समय बंगाली मोशाय ने कृतज्ञता, सहृदयता और विस्मय से आँखें फैला कर स्वीकार किया—'पाञ्जाबीरा निश्चई बीर पुरुष।'

नन्दनसिंह कहीं कोई जगह न मिल सकने के कारण अपने गाँव के पिरथीसिंह ड्राइवर की कोठरी में ही डेरा डाले था। अग्नि से युद्ध में उसने विशेष साहस दिखाया था। इसलिये उसकी चर्चा भी विशेष रूप से हुई—'नन्दनसिंह कि वास्तवेई नन्दन काननेर सिंह!'

इस घटना के बाद, अनेक बंगाली परिवारों से बसे उस बड़े मकान में उत्तर की ओर रहनेवाले, श्रीयुत विपिन घोष मोशाय ने अपने भाग की सब से उत्तरवाली कोठरी और बराम्दा नन्दनसिंह को बारह रुपये माहवार में किराये पर दे उसकी सहायता करना स्वीकार कर लिया। मकान का यह लगभग चौथाई से कम भाग आधे मकान के किराये में पा कर भी नन्दनसिंह को सहायता ही मिली।

मैट्रिक तक पढ़ने के बाद रोज़ी की खोज में नन्दनसिंह कलकत्ता पहुँचा था। वह शहर और मुफ़स्सिल में लुधियाने की बनी स्वदेशी वस्तुओं का व्यापार करता था। भवानीपुर के पञ्जाबियों में रहने से बंगाल में आ कर भी वह बंगालियों से दूर रहा। बंगाल को जानने की इच्छा उसकी अपूर्ण ही रही। आग की दुर्घटना के चक्र ने उसके भाग्य को अवसर दिया। बंगाली जीवन की झलक उसे मिलने लगी।

कलकत्ते में अशिक्षित पञ्जाबी भी बंगला बोल और समझ लेते हैं। बंगला पढ़ना सीख लेने पर नन्दनसिंह की नवयुवक कल्पना रवीन्द्र, शरत और सौरीन्द्र की आख्यायिकाओं का नायक बनने के स्वप्न देखने लगी। बंगाल के प्रति अनुराग से उसकी भावना भीग गई। वी

निचुड़ते 'कड़ाह-प्रसाद' (हलवे) की अपेक्षा चाशनी में तैरने रसगुल्ले उसे अधिक लुभाने लगे। छाछ के छन्ने (कटोरे) से अधिक रुचिकर 'चायेर काप' (चाय का प्याला) हो गया। पञ्जाब के सपाट मैदानों में हू-हू करती लूह और घास पर जम जानेवाले पाले की पपड़ी वीभत्स जान पड़ने लगी और निरंतर सुर्मई मेघों से छाया आकाश और दक्खिन वायु उसे सुहाने लगे। स्वस्थ, सबल, सुडौल, सिलवार और कुर्ता पहने, सिर पर ओढ़नी की गेंडुली पर मटका टिकाये पञ्जाबी देहात की, सूर्य के ताप से तपा गेहुँआ रंग लिये पंजाबी स्त्रियाँ उजड्ड जान पड़ने लगीं। कछुए की तरह अपने ही भीतर सिमिट जाने के लिये यत्नशील, साँवली, नमकीन, चपलाक्षी बंगाली ललनाओं के महावर रचे चरण उसका मन व्याकुल करने लगे।

× × ×

अमला की आयु का प्रश्न विवादास्पद था। म्युनिसिपैलिटी का खाता देखने से उसकी आयु सत्रह से ऊपर होती। परन्तु दूरदर्शी बंगाली गृहस्थ ने कन्या के विवाह में स्वाभाविक आशंका के विचार से, लड़की की आयु गणना में सावधानी कर, अभी तक उसे पन्द्रह से बढ़ने न दिया। कलकत्ते के अभिज्ञ वातावरण में समझ-बूझ और शरीर की उठान में अमला पञ्जाब की बीस बरस की दिहातिन को बहुत कुछ सिखा सकती थी। माँ ने बहुत पहले ही दूसरे लोक में स्थान पा लिया था। विमाता के व्यवहार में प्रकट विरोध की तीव्रता न थी तो दूसरे की सन्तान के प्रति ममता की चौकसी भी न थी। इस उपेक्षा का अर्थ अमला के लिये हरदम की रोक-टोक और नोक-झोंक से मुक्ति था। माँ प्रायः नीचे के खण्ड में रहती और अमला ऊपर।

दुमञ्जिले पर अमला की कोठरी से आँगन पार नन्दनसिंह की कोठरी का दरवाज़ा दिखाई देता था। आने-जाने के लिये नहीं परन्तु दृष्टि के लिये राह थी। दोपहर में सिलाई की मैशीन चलाते समय

गुनगुनाते हुए या कोई दूसरा काम करते समय अमला उस ओर देखती तो नन्दनसिंह प्रायः दिखाई देता। सुबह-शाम वह अपने सामान के नमूने की पेटी ले फेरी के लिये जाता और दोपहर को आराम करता। माँ नीचे रहती थीं, घोष बाबू दफ़्तर में। मन में कुभावना न होने पर भी नन्दनसिंह की दृष्टि आँगन पार अमला की ओर बरबस जाना चाहती। यों शायद एक बेर देख लेने पर वह चाहे यत्न से न भी देखता परन्तु अपनी दृष्टि का प्रभाव अमला के व्यवहार में देख, देखने की इच्छा सार्थक हो उठी। नन्दनसिंह के मस्तिष्क में एक भारीपन सा आ गया और सीना जैसे कुछ फैल कर साँस की गहराई बढ़गई।

अमला नन्दनसिंह की दृष्टि से कुछ झुक और सिमट सी जाती परन्तु अपना स्थान छोड़ कर हट भी न पाती ; जैसे·······जाल में पंजे फँस जाने पर बटेर छटपटा कर व्याकुल तो होता है पर उड़ नहीं सकता। यदि दोपहर में नन्दनसिंह मकान पर न रहता या उसकी ओर के किवाड़ बन्द रहते तो अमला को एक अभाव सा अनुभव होता और बेबसी का क्रोध सा भी। उस समय या तो अमला के हाथ से फर्श पर कोई वस्तु गिर कर आहट हो जाती या अपनी ओर के किवाड़ों को वह काफ़ी खटके से खोल या बन्द कर देती। ऐसा होने से नन्दनसिंह की ओर के किवाड़ खुल जाते।

आरम्भ में नन्दनसिंह अमला की कोठरी की ओर झाँकता तो भद्रता और आशंका के विचार से किवाड़ों को यों बंद करके कि वह देख तो ले पर दीखाई न दे। परन्तु उसने अनुभव किया कि दिखाई दिये बिना देखना निष्फल है। अमला का ढंग दूसरा था, वह देखती न थी केवल दिखाई दे जाती थी और ऐसे कि उसे नहीं मालूम कि वह दिखाई दे रही है।

प्रथम तो नन्दनसिंह के बंगाली न होने के कारण उसके प्रति भद्र-लोक की मर्यादा से संकोच और सम्मान की उतनी आवश्यकता न थी

आर फिर आग की दुर्घटना के समय वह अमला और उसकी माँ की कीचड़ से लथपथ, विक्षिप्त अवस्था में पानी की बाल्टियाँ ले-ले कर घर में सब जगह कूद-फाँद आया था। उनके मकान में आ बसने पर पिछली दूर्गापूजा के अवसर पर उसने अमला की माँ, अमला और बीनू, चीनू को गुजराती छाप की साड़ियाँ उपहार में भेंट की थीं। बीच में कुछ दिन के लिये गाँव जा लौटने पर उसने अपने देश द्वाबे का कुछ घी भी भेंट किया था। इस सहृदयता की स्वीकृति में घोष बाबू भी प्रायः मछली का झोल बीनू-चीनू के हाथ उसे भिजवाते रहते।

अमला की विमाता स्वभाव से ही आत्मरत होने पर भी अपनी सन्तान के प्रति नन्दनसिंह की उदारता देख उसे सुपुरुष मान चुकी थी। परायेपन की जगह पारिवारिक आत्मीयता ले चुकी थी। भाग्य के अदृश्य चक्र की दाँतों ने अमला को नन्दनसिंह के बहुत समीप ला खड़ा किया।

एक दिन आषाढ़ की दोपहरी में माँ नीचे ठंडे में सो रही थी। अमला हवा के विचार से दुमञ्जिले के बराम्दे में बैठी सिलाई कर रही थी। नन्दनसिंह लौटा न था। अमला क्षोभ अनुभव कर रही थी। नन्दनसिंह के भाग का बराम्दा लोहे की छड़ों द्वारा शेष मकान के बराम्दे से अलग था। नन्दनसिंह के आने पर उसने शिकायत की नज़र से एक बेर देख सिर झुका लिया।

माथे का पसीना पोंछते हुए नन्दनसिंह ने मुस्करा कर बंगला में पूछा —'केनो (क्यों) ?'

नन्दनसिंहका बंगला बोलना उसके उच्चारण के कारण मज़ाक बन जाता था। बंगला पर नन्दनसिंह का यह अत्याचार अमला को अत्यन्त मधुर लगता और क्रोध टिक न पाता। परन्तु क्रोध का अधिकार कायम रखने के लिये मुँह फुला, आँखे झुकाये ही अमला ने कहा—'एई ते भालो, आपनी बिये करे पञ्जाबी बऊ के निये

आशुन। आमरा गल्प-सल्प करबो ! ए रकम ऐकला बोशेर यन्त्रणा आर सह्य हय ना !' (इससे तो अच्छा है कि ब्याह कर पंजाबी बहू ले आओ ! उसी से कुछ बात-चीत करेंगे। यों अकेले बैठे रहने की यन्त्रणा असह्य हो जाती है।)

नन्दनसिंह सहसा गम्भीर हो गया—'अमला, एई तोमार मुहब्बत ? शे आमि करते पारी ना ! आमार जन्ये तुमि शब किछु !'

अमला ने सिलाई की मशीन पर झुक होंठ दबा चुटकी ली—'केनो पंजाबी मेये तो बेश सुन्दरी········फरशा-फरशा गायेर रंग········देह ओ बलिष्ठ·······! (क्यों; पंजाबी लड़कियाँ तो बहुत सुन्दर होतीं हैं। गोरा-गोरा रंग, बलिष्ठ शरीर !) नन्दनसिंह केवल गहरा साँस ले कर रह गया।

इस प्रकार मान-अभिनय से तीखी होती जाती प्रेम की मिठास भरी पीड़ा में, उस निकटता को भी असह्य दूरी अनुभव करते, कई दिन निकल गये। जैसे पिंजरे में बन्द पक्षी से मुक्त पक्षी प्रेम कर छटपटा रहा हो ! प्रेम की सार्थकता पिंजरे का द्वार खुले बिना कैसे हो ?

× × ×

एक दिन दोपहर को बराम्दे की सीखों के समीप दीवार से चिपक अमला ने अत्यन्त दुख भरे स्वर में नन्दनसिंह से पूछा—'मेरे मर जाने का समाचार सुन कर तुम क्या करोगे ?'

नन्दनसिंह के मुख से मुस्कराहट की रेखा उड़ गई। वह गम्भीर प्रश्नात्मक दृष्टि से अमला की ओर देखता रह गया। धोती की खूँट के धागे उँगलियों में बँटते हुए अमला ने कुछ हिन्दी-मिली बंगला में उत्तर दिया—'आजकल बाबा ब्याह की बात बहुत चलाते हैं। गाँव-देहात के एक अनजाने बूढ़े के हाथ पड़ जन्म भर कलपने से पहले ही मैं शरीर पर केरोसिन तेल की बोतल उड़ेल जल मरूँगी। जन्म भर की पीड़ा से तो यह क्षण भर का दुख भला।'

अधीर स्वर में नन्दनसिंह ने पूछा—'क्या कहती हो अमला ?'

'कहती क्या हूँ'—अमला के आँसू बह आये—'बाबा को तो किसी प्रकार जाति की रक्षा करनी है—। और विमाता को पराये पेट की लड़की के लिये दो मुट्ठी भात भारी हो रहा है।'

नन्दनसिंह कुछ बोल न सका। मन का क्षोभ वश में करने के लिये उसने लोहे की छड़ों को अपने हाथों की मुट्ठियों में जकड़ लिया।

आँसू पोंछ अमला बोली—'तुम्हें भी मैंने केवल दुख ही दिया। कभी कुछ अनुचित कहा हो तो क्षमा कर देना।'

'अमला !'—लोहे की सीखों को और भी अधिक कठोरता से दबा कर नन्दनसिंह ने कहा—'क्या कह रही हो तुम ! मेरी जान रहते यह नहीं हो सकता। यहाँ मैं बेबस हूँ। तुम बंगाली हो और मैं पंजाबी। फिर भी जब तक गर्दन पर सिर है……समझी ! हमारे पंजाब देश में ऐसा कोई विचार नहीं चलता……समझीं !'

× × ×

खिदरपुर घाट पर लगे रंगून जानेवाले जहाज़ के डेक पर स्थान घेर लेने के लिये मुसाफ़िर सीढ़ियों पर धकापेल मचाये थे। नन्दनसिंह ने सीढ़ी पर पाँव रखा ही था कि उससे आगे, एक बड़े ट्रङ्क पर स्टील का सूटकेस रखे कौशल से चढ़ानेवाला कुली किसी तरह झटका खा गया। स्टील केस नन्दनसिंह के सिर पर आ गिरा।

इधर-उधर से लोग दौड़ पड़े। लहू-लुहान नन्दनसिंह को एक ओर लिटा दिया गया। उसके पीछे पंजाबी पोशाक में घूँघट निकाले एक जवान स्त्री खड़ी थी। वह स्त्री घबराहट में रो पड़ी।

घायल का पता जानने के लिये पुलिस ने उस पंजाबी वेशधारी युवती से हिन्दुस्तानी में प्रश्न किया। कुछ देर केवल रोने के बाद उसने बंगला में उत्तर दिया कि वे लोग पंजाब देश के रहनेवाले हैं और बरमा जा रहे थे।

हिन्दुस्तानी न समझ कर बंगला बोलने वाली पंजाबी स्त्री के सम्बन्ध में पुलिस को सन्देह हो गया। ज़ख्मी नन्दनसिंह और अमला पुलिस की हिरासत में ले लिये गये। जहाज़ चला गया। अमला फूट-फूट कर रो रही थी। वह किसी का कुछ चुरा कर नहीं भाग रही थी। वह केवल मिट्टी का तेल सिर पर डाल कर जल मरने से बचना चाहती थी।

× × ×

कार्चीपाड़ा के अनेक बंगाली भद्रलोक घोष बाबू को साथ ले थाने में हाज़िर हुए। अनेक लोगों के समझाने पर बंगाली कोतवाल वसु महाशय ने दीन बंगाली भद्र समाज के सम्मान के प्रति करुणा कर घोष बाबू की अविवाहित युवती लड़की को बिना चौकसी घर में रखे रहने के लिये भर्त्सना की। पुलिस कोर्ट में जाने के बाद लड़की का विवाह असम्भव न कर देने के विचार से उन्होंने दयाकर मामला कागज़ों में दर्ज किये बिना ही छोड़ दिया।

परन्तु कम आयु की नाबालिग़ बच्ची को भगा कर ले जानेवाले पंजाबी को कलकत्ते में रहने देना सुरक्षित न था। उसपर अनेक अपराधों का सन्देह कर उसे कई दिन लाल बाजार की हवालात में रखा गया और पंजाब से भागा हुआ अपराधी होने के सन्देह में उसे हिरासत में ही शिनाख्त के लिये पंजाब भेज दिया गया।

× × ×

काचीपाड़ा के प्रौढ़ भद्र समाज ने दो सनातन सत्य पुनः स्वीकार किये ; एक तो पंजाबी प्रकृति से ही बदमाश होता है; दूसरा—जवान अविवाहित लड़की घर में रखना ज्वालामुखी पर निश्चिन्त सोने के समान है।

अमला का विवाह तुरन्त ही हो गया। विवाह के बाद वह मुफ़स्सिल में चली गई। विवाह के समय उसे पति के समीप बैठा जब शुभदृष्टि के लिये नव दम्पति को चादर की ओट कर एक दूसरे को देख लेने का अवसर दिया गया, वह आँखें खोल ही न पाई। अब पति के

दर्शन और स्पर्श के पश्चात् फिर केरोसिन तेल से स्नान कर दियासलाई की ज्वाला से माँग में सिन्दूर भर लेने की बात मन में आने लगी। परन्तु उसने मन को समझाया ; जो भाग्य में बदा है वह तो सहना ही होगा। वह काली माई से, मृत्युद्वारा दुखमय जीवन से त्राण पाने की प्रार्थना कर रह गई।

परन्तु अमला का भाग्यचक्र रुका नहीं। पाँचकौड़ी बाबू प्रथम पत्नी की मृत्यु के पश्चात् तीन सन्तानों के पालन के लिये माता की आवश्यकता होने से कम दहेज पर भी घोष बाबू को कन्यादान के पुण्य का अवसर देने के लिये तैयार हो गये थे। परन्तु घोष बाबू उतना भी न कर सके। नक़दी देना भाग्य से उनके बस का न था, इसलिये वर की जायदाद सोने का ठोस गहना दे कर ही उन्होंने जामाता को सन्तुष्ट कर दिया था। पाँचकौड़ी बाबू वह गहना बेचने गये तो पर अमला के भाग्य से सोने का वह गहना केवल मोटा मुलम्मा निकल आया।

बाज़ार में मुलम्मे को खरा सोना बना कर बेचना सरकार की दृष्टि में दण्डनीय अपराध है, परन्तु दहेज में खोटा गहना देने के सम्बन्ध में कोई क़ानून नहीं और न यह धोखा प्रमाणित हो जाने पर विवाह ही रद्द हो सकता है।

ससुर के धोखे की शिकायत करने कलकत्ते जा कर पाँचकौड़ी बाबू को मालूम हुआ कि धोखा केवल रकम के सम्बन्ध में ही नहीं हुआ; घर से भागी लड़की उनसे ब्याह कर उनकी जाति भी नष्ट कर दी गई। ऐसे दग़ाबाज़ ससुर से बदला लेने की केवल एक ही राह थी। पाँचकौड़ी बाबू ने अमला को गर्दन पकड़ घर से निकाल दिया।

ससुर गृह में प्रवेश करते समय अमला का हृदय निराशा और दुख से फटा जा रहा था। उस घर से निकाली जाते समय यदि उसके प्राण शरीर से निकल जाते तो वह सौभाग्य समझती। पति के घर से निकाली जा कर अमला कितनी देर विमूढ़ हो घुटने पर

माथा टेके सड़क किनारे पेड़ के नीचे बैठी रही। वह कुछ समझ न पा रही थी, कहाँ जाये? जब वह अपनी इच्छा से घर छोड़ गई थी, उसे पकड़ लाने के लिये पुलिस दौड़ी चली आई। अब घर से निकाल दिये जाने पर घर में जगह दिलाने के लिये पुलिस की शक्ति सहायता के लिये न आई। सड़क पर से गुज़रने वाले फटी धोती के अवगुण्ठन में लिपटी, सड़क किनारे बैठी युवती नारी को विस्मय, करुणा और रहस्य की दृष्टि से देख चले जाते परन्तु उस उलझन में फँसने के लिये कोई उससे कुछ पूछने न आया।

अँधेरा हो गया। अमला के विजड़ित मस्तिष्क और पथराई आँखों के सन्मुख सम्पूर्ण संसार एक भयंकर भूडोल से विचलित और छिन्न-भिन्न हो रहा था। परन्तु संसार उसकी चिन्ता न कर अपनी अनेक धुरियों पर समुचित रूप से घूमता जा रहा था। सड़क पर से गुज़रने वाले अनेक पथिक, अनेक प्रकार की गाड़ियाँ एक के बाद एक आ और जा रही थी। सम्मुख आधे फर्लांङ्ग पर, माथे पर लगी दैत्य की आँख से मील भर तक अंधकार को चीरती हुई, पृथ्वी को कँपाती हुई अनेक रेल गाड़ियाँ दुर्दम वेग और शक्ति से दौड़ी चली जा रहीं थीं। अमला के मस्तिष्क की जड़ता कुछ कम होने पर रेल की गड़गड़ाहट ने ही उसका ध्यान आकर्षित किया। वह गाड़ी ही मृत्युद्वारा उसे शरण दे सकती थी।

शरण की खोज में अमला उठी और अवसाद की जड़ता में अपना मुख और सिर धोती के आँचल में लपेट मर जाने के लिये रेल की लाइन पर जा लेटी।

उसे अनुभव हुआ, पृथ्वी काँपने लगी और फट कर उसे अपने गर्भ में शरण दे देगी। रेल की चीखें सुनाई दीं। अमला को अनुभव हुआ कि पहिया उसके ऊपर से गुज़र ही रहा है······मुक्ति·······!

अनेक ठोकरें खा कर वह उठी। इंजन के माथे की आँख उसको अपने क्रोध से भस्म कर देना चाहती थी। पूछे जाने पर वह कुछ उत्तर

न दे सकी। लोग उसे बाँहों से थाम कर ले गये। उसे गाड़ी पर बैठा दिया गया। अन्त में वह लोहे के सींखचे जड़ी कोठरी में ताला लगाकर बन्द कर दी गई।

कुछ स्वस्थ होने पर अमला ने उत्तर दिया, वह मर जाने के लिये रेल की पटरी पर लेटी थी। इस पर मुक़द्दमा चला। रेल की पटरी और इंजन की शक्ति के इस दुरुपयोग के इरादे के लिये या आत्महत्या के प्रयत्न के लिये उसे डेढ़ बरस जेल की सज़ा दी गई। इस सज़ा ने शरण का रूप ले उसे घबराहट से मुक्ति देदी।

× × ×

जेल से छूटते समय अमला के के लिये संसार फिर शून्य था, परन्तु जेल में नसीमा ने उसे बहुत कुछ समझा दिया था। और जानने न जानने में उतना ही अन्तर है जितना होने और न होने में।

नसीमा पहले भी दो बार जेल काट चुकी थी। भूँडचिरे कञ्चन ने अपनी जान बचाने के लिये उसे दगा दे कोकीन के मामले में जेल भिजवा दिया था। दुनिया में कहीं जगह पाने की अमला की अबोध चिन्ता का उपहास कर नसीमा ने कहा—'अरे औरत की जवानी है तो उसके हाथ टकसाल है!···तेरी फिक्र करनेवाली दुनिया है!······ कोई दिन हमने भी 'सोनागाछी' में राज किये हैं बिटिया?

× × ×

पन्द्रह बरस बाद।

अमलादेवी के दो मकान हैं। पुलिसवाले उसका नाम ले गाली दे कहते—'उस······के चक्कर में फँसी लौण्डिया का निस्तार नहीं। बीसियों लट्ठबन्द गुण्डे जिसकी मातहती में हों।'

मिस्सी से दाँतों की कोर रंगे, दाँये गाल में पान दबाये, सरौते से सुपारी कतरती हुई, आँख दबा कर वह कितने ही लोगों के भाग्यचक्र दाँये बाँये चलाती रहती है।

पुरुष भगवान—

मंसूरी में यदि आपकी कोठी आम बाजार से दूर है तो बीसियों जहमतें होंगी ; पर एक आराम रहेगा, दर्शन करने और दर्शन देने के लिये आनेवालों से आप रक्षा पा सकेंगे। लेकिन जो लोग लम्बी सैर से सेहत सुधारने की आशा करते हैं, उनसे आप वहाँ भी नहीं बच सकते।

दोपहर बीत चुकी थी। खिड़की से आती घाम में आराम कुर्सी पर लेटा शीपिनका नाटक The Modern Ethics (आधुनिक नैतिकता) पढ़ रहा था। अहाते में बिछी बजरी पर कदमों की आहट सुनाई दी ; कुत्ता भोंका ; पुकार आयी 'कहाँ हो भाई ?' और फिर अपना नाम।

समझ गया, रामनाथ है। अपने सुखासन से ही उत्तर दिया—'आ जाओ !' और पृष्ठ समाप्त करने का यत्न करने लगा।

रामनाथ आ गया। समीप की कुर्सी पर बैठ, मार्ग की चढ़ाई में आया सिर का पसीना सुखाने के लिये उसने अपनी तहाकर बाँधी हुई खद्दर की नोकीली पगड़ी मेरी कुर्सी की चौड़ी बाँह पर रख दी। दोनों हाथों की अंगुलियाँ आपस में चटखाते हुए खिड़की की राह देवदार की टहनियों पर नजर दौड़ा उसने पूछा—'क्या हो रहा है ?'

'कुछ नहीं, ऐसे ही,.........सुनाओ !'—पुस्तक एक ओर रख उत्तर दिया।

'यों ही चला आया······कुछ घूमा फिरा करो···फ़ायदा क्या है पहाड़ आनेका ? तुम्हारा नौकर कहाँ है ?···एक गिलास जल पीता। पहाड़ पर चलने से व्यायाम अच्छा हो जाता है।' रामनाथ ने नसीहत की।

'भोला ! पानी लाओ, एक गिलास !'—मैंने पुकारा।

रामनाथ सुना रहा था, कौन कौन मंसूरी आये हुए हैं, किन लोगों से वह मिल आया है, कौन जल्दी ही नीचे चले जानेवाले हैं। पाँच मिनट बीत गये। जल के लिये उसने फिर याद दिलाई इस बार कुछ ऊँचे स्वर में जल लाने का हुक्म दोहरा कर मैं रामनाथ की बात सुनने लगा। कुछ मिनिट और बीत गये। झुंझलाकर उसने कहा—'बड़ा बत्तमीज है नौकर तुम्हारा·······या सो रहा है ?'

तैश में उठा। खयाल था, पिछवाड़े बैठ कर भोला जूतों पर पालिश करते हुये सोगया होगा। जाकर देखा, काम खतम कर वह गायब है। रसोई में झाँका। वहाँ भी वह न था।

रसोई की खिड़की के नीचे समीर की कोठी का खण्डहर है। किसी आँधी से कोठी की छत उड़ गई। वह कतई बेकार पड़ी है। लेकिन उस कोठी के बगीचे में अब भी भोला की देख-रेख में तरकारी और फूलों की खेती मेरे उपयोग के लिये होती है। हमारे प्रयत्न से उत्पन्न भोजन की सामिग्री में भाग पाने के लिये लँगूर भी उधर चक्कर लगाते हैं। सोचा, भोला लँगूरों को खेदने गया होगा।

खिड़की की जाली से झाँका। भोला वहाँ था परन्तु अकेला नहीं। उसे पुकार न सका ; उचित न जान पड़ा। कौतुहल था परन्तु देखते रहने में संकोच अनुभव हुआ। स्वयं जलका गिलास ले लौट आया।

'अरे······!'—रामनाथ ने विस्मय से पूछा—'क्यों, नौकर क्या कर रहा हैं ?'

'उसे रहने दो' - मुस्कराहट न रोक सका।

'क्यों'—रामनाथ ने प्रश्न किया।

'इस समय उसे पुकारने से शाप लगेगा।'

आधा गिलास जल पी सांस लेते हुये रामनाथ बोला—'मतलब ?'

मेरी मुस्कराहट से उसका कौतूहल और जगा। गिलास समाप्त कर उसने अपना प्रश्न दोहराया।

'देखोगे ?'—मैंने पूछा—'लेकिन चुप रहना, आहट न करना...आओ !'

रसोई घर की खिड़की के समीप खड़े हो अंगुली से रामनाथ को दिखाया :—गिरी हुई कोठी के पिछवाड़े पहाड़ की दीवार के साथ, जहाँ बड़े-बड़े पत्थरों का पुस्ता बना है और पत्थरों की सांधों में से जंगली गुलाब, केसरी नस्टूशियम और सुफेद हनीसकल के फूलों से लदी बेलें हवा में हिलोर रही थीं ; नीचे चौड़ी चट्टान पर भोला बैठा था और उसके साथ बैठी हुई थी, फटती जवानी से चंचल एक खूबसूरत गोरखा लड़की। लड़की सीप के बटनों से सजी काले अलपाका की वास्कट, सफेद कमीज और काले किनारे की मोटी गुलाबी रंग की धोती पहरे थी। दोनों के चेहरे खुशी से दमक रहे थे। रामनाथ की ओर बिन देखे मेरे मुख से निकला—'प्रकृति ने क्या सुहाग-सेज सजाई है।

भोला बाँयें हाथ में लड़की का दाहिना हाथ थामे दाहिने हाथ की अँगुली से उसकी ठोड़ी और गालों को गुदगुदाने की चेष्टा कर रहा था। वह लड़की बाँये हाथ में थमी नस्टूशियम की एक टहनी से भोला के सिर पर मार मार कर इस शरारत का दण्ड दे रही थी।

भोला ने उसका दूसरा हाथ भी पकड़ उसे खींच कर बाँहों में ले लिया। बार बार वह अपने ओठ आगे बढ़ाता और लड़की अपना मुँह कभी दांये और कभी बाँये हटा लेती। आखिर भोला को सफलता मिली। लड़की का सिर पीछे लटक गया उसने बाँहें भोला के गले में डाल दीं।

'अब आ जाओ !'—रामनाथ का हाथ दबाकर मैंने कहा।

गम्भीर क्रुद्ध दृष्टि से मेरी ओर देख उसने पूछा—'यह औरत कौन है ?

'बुड्ढे गोरखा चौकीदार की नयी जवान बीबी ।'—उत्तर दिया।

'यह क्या बदतमीज़ी है ?'—मुझे डांटते हुए उसने कहा—'शरम नहीं आती ?'

'कमरे में आ जाओ !'—धीमे स्वर में उत्तर दिया।

'मेरा नौकर होता, खाल खींच लेता—रामनाथ झुंझलाया—'और तुम देखकर खुश हो।'

'क्यों ?'—कुछ हत-प्रतिभ होकर पूछा।

'क्यों ?'—आश्चर्य और क्रोध भरी दृष्टि से मुझे सिर से पैर तक देखते हुए रामनाथ ने दुहराया।

'हाँ क्यों ?'—मैंने आग्रह किया—'आखिर क्या अन्याचार हो गया ?

'अत्याचार या अनाचार और क्या होगा ?'—रामनाथ क्रोध में थुथला गया।

'हो सकता है परन्तु मैं-तुम दखल देनेवाले कौन हैं ?······उनके मनकी चाह है और वह औरत भी परम सन्तुष्ट है। और शायद यह संतोष उस औरत को दूसरी किसी जगह नहीं मिल सकता। उन्हें अवसर मिला है तो कोई दखल क्यों दे ?······किसी को क्या अधिकार है ?' सहमते हुये मैंने उत्तर दिया।

'अधिकार'—क्रोध में थुथला कर रामनाथ ने प्रश्न किया।

'हाँ अधिकार—मैंने साहस किया—पन्द्रह रुपया माहवार में मैंने क्या उसका जीवन खरीद लिया है ? भोला ऐसा क्या कर रहा है जो दूसरे नहीं करते ? किस बात के लिये उसकी खाल खींच ली जाय ? केवल अवसर का सवाल है।'

'और वह तुम्हारा बूढ़ा गोरखा चौकीदार ?'—आवेश वश में करने के लिये अपने बन्द गले के कोट में बटन बन्द करते हुए रामनाथ

बोला—'देखले तो खुखरी से सिर काट लेगा या नहीं ?'

'काटने का यत्न करेगा ज़रूर। वैसे ही जैसे आज़ादी के लिये जान की बाजी लगा देने वाले गुलाम को शोषक मालिक कालेपानी और फांसी की सज़ा देता है। परन्तु उस बूढ़े को अधिकार क्या है ? क्या उसका ही संतोष सब कुछ है, इस औरत का कुछ नहीं ? क्या उस लड़की को वह बूढ़ा यह तृप्ति दे सकता है ?'

विस्मय से फैली आँखों से रामनाथ मेरी ओर घूर रहा था परन्तु में कहता गया—'क्या सिर काटे जाने के खतरे को वह लड़की नहीं जानती ? उस खतरे और जोखिम को जानकर, सिर हथेली पर रखकर वे दोनों जीवन की प्रेरणा से मिले हैं। उनका यह स्वच्छन्द मिलन कितना स्वाभाविक और पवित्र····· अपने शब्दों से मैं स्वयम ही हतप्रतिम हो गया। मन में ऐसी बात सोचने पर भी समाज में सम्मान खोदेने के विचार से वह बात कभी होठों पर न आई थी। मुख से बात निकल जाने पर निबाहने के लिए कहा—'और तुम उस जाहिल चौकीदार की तरह उसकी खाल खींच लेना चाहते हो ?'

'जाहिल····· वह उसकी ब्याहता औरत नहीं ?'—मुझे निरुत्तर कर देने के लिए रामनाथ ने पूछा।

'ब्याह क्या है ?'—मैं निरुत्तर न हुआ।

'ब्याह क्या है ?'—उसने दोहराया।

'स्त्री पर पुरुष का अधिकार ?'—मैंने पूछा।

'हाँ अधिकार, धर्म और समाज का अधिकार !'—अपनी मुटठी ऊपर उठाकर रामनाथ बोला।

'वैसा ही अधिकार जैसा दास के जीवन पर स्वामी को होता है ?'

रामनाथ झुंझलाहट में फिर थुथला गया—'पुरुष आयु-भर सब संकट झेलकर स्त्री का पालन नहीं करता ? क्या इसलिए कि वह उसे धोखा दे ? रामनाथ के नेत्रों में विजय चमक उठी।

इस पर भी मैं बोला—

'अच्छा यदि मोटरों के अड्डे पर घुटनों के बल रेंगकर भीख मांगने वाली बुढ़िया तुम्हें एक लाख रुपये रोज़ की मजदूरी दे पति की ड्यूटी पर नौकर रखना चाहे······यदि उसकी दया बिना तुम्हें भोजन वस्त्र की सुविधा न रहे ?'

'तुम्हारा दिमाग फिर गया है'—वितृष्णा से उसने उत्तर दिया—'ऐसा कभी हुआ है ?'

पीठ फिराकर वह चला गया।

और मैं सोचता रहा—सच है, शायद ऐसा कभी नहीं हुआ। और हे भगवान ऐसा कभी न हो।·········शायद ऐसा होगा भी नहीं। ······भगवान के रहते ऐसा अत्याचार न होगा क्योंकि वे स्वयम् पुरुष हैं।

देवी का वरदान—

कम्पोज़ीटर की तनख़ाह ही कितनी; बीस न हुये पचीस। छुट्टी के समय भी काम (overtime) करके तीन-चार और कभी पाँच और बन जाते। तनख़ाह कम होने पर भी कम्पोज़ीटर का काम आसान नहीं होता। अक्षर-अक्षर जोड़ पोथी तैयार कर देना सहल काम नहीं।

जाल बुनती मकड़ी की तरह फुर्ती से हाथ चलाकर सामने फैले पाँच सौ तेरह खानों में से चींटी-चींटी जैसे अक्षर चुनकर शब्द बनाना, शब्दों से वाक्य और वाक्यों से पक्तियाँ। आँखें पथरा जाती हैं. कमर टेढ़ी हो जाती है और दिमाग़ बिलकुल कुन्द। अपने हाथ से बने आत्मज्ञान और भौतिक-ज्ञान के ग्रन्थों के विषय में वह कुछ भी नहीं जान पाता। जैसे मधुमाखी अपने बनाये शहद की महिमा नहीं जानती। पुस्तक पढ़ने वाला भी कम्पोज़ीटर को कभी जान नहीं पाता।

पुस्तक बना सकने की यह विद्या जान कर भी रग्घू महाराज पुस्तक बनाने का मुनाफ़ा न कमा पाये। कारण यह कि छापे के अक्षर टाइप फाउण्डरी में ख़रीदने के लिये हज़ार से अधिक रुपया दरकार होता है।

और अक्षरों के रूप में तैयार पुस्तक को कागज़ पर छापने के लिये हज़ारों रुपये की मशीन की ज़रूरत होती है। कागज़ के लिये भी सैकड़ों चाहिये। फलतः चातुर्य और महाविद्याओं से पूर्ण अनेक ग्रन्थों और पुस्तकों के निर्माण में परीश्रम करके भी रग्घू महाराज जो थे वही रहे।

युद्ध का संकट जैसा दूसरे लोगों पर पड़ा वैसे ही रग्घू महाराज पर भी। युद्ध के महासंकट के अगल-बगल इस संकट से कुछ त्राण के उपाय भी पैदा हो गये। प्रकृति में प्रायः ऐसा होता है: – जहाँ बिच्छू-बूटी उपजती है उसके समीप ही इस बूटी के छू जाने से पैदा होने वाली पीड़ा को दूर करने वाली पत्ती भी उगी रहती है और कुछ लोगों का विश्वास है कि विषधर सर्प के सिर की मणि ही सर्प के विष का उपाय भी कर देती है।

रग्घू महाराज पर युद्ध का संकट तो आया परन्तु उस बिपदा से त्राण के उपाय उनके बस के न थे। गोमती-प्रेस के उनके अनेक साथी २०) की कम्पोज़ीटरी छोड़ गन-फैक्टरी में चालीस पैंतालीस की मज़दूरी करने लगे। कुछ ने कम्पोज़ीटर की तनख्वाह में पेट भरते न देखा तो फौज के लिये तरकारी सुखाने के कारखाने में जा सवा डेढ़ रोज़ाना की पगार करने लगे।

ब्राह्मण की सन्तान होकर रग्घू महाराज के लिये यह सब ओछे कर्म सम्भव न थे। बीस बिसवे मिसिर ठहरे। गनफैक्टरी में दिन भर जाने किस-किस नीच जात का साथ हो?..... प्यास लगे कभी पानी का घूँट ही निगलना पड़े तो वहाँ कैसे होता?......जो दुख संकट बदा है उसे तो झेल ही रहे थे; जाति और धर्म गंवाकर परलोक भी बिगाड़ लेते! मज़दूरी चाहे चवन्नी की हो चाहे चालीस रुपये की, है मज़दूरी ही। शूद्र का कर्म! काशी महाराज की सान्तान हो, कंधे पर बरमसूत (जनेऊ) पहने रग्घू मज़दूरी करने कैसे जाते? प्रेस के काम

में तलब कम भले ही हो परन्तु काम तो इज्जत का है; सरस्वती की पूजा ! ब्राह्मण को वही काम शोभा देता है। आदमी अपने धर्म-कर्म से रहे; कर्म का फल देने वाले भगवान हैं।

रग्घू महाराज का जन्म पत्री का नाम रघुनाथ मिश्र था। घर के लोगों ने छुटपन में लाड से या सहूलियत से रग्घू पुकारा। आयु तो बढ़ी, शरीर भी बढ़ा परन्तु समाज अथवा व्यक्तियों की दृष्टि में रग्घू के व्यक्तित्व का आदर न बढ़ा। बाल खिचड़ी हो जाने पर भी वे रग्घू ही रहे या जाति के प्रति आदर के विचार से महाराज कह कर पुकार लिये जाते। जन्म की पवित्रता के कारण या उपयोग के विचार से उनका आदर था। प्रेस में कभी किसी गाहक के संयोगवश जल माँग लेने पर रग्घू महाराज की ही पुकार होती। वे हाथ धो, प्रेस के अहाते के कुंये से जल की चमचमाती लुटिया हाथ पर रख गर्व से दफ़्तर में उपस्थित होते। कौन है ऐसा जो उनके हाथ का जल पीने से इनकार कर सके ?

सुनते हैं, नवाब वाजिदअलीशाह के एक सूबेदार असमतअली ख़ान प्रौढ़ अवस्था तक सन्तानहीन रह दुखी थे। रग्घू महाराज के पुरखा पंडित काशीनाथ मिश्र के मंत्र बल से सूबेदार साहब को पुत्र प्राप्त हुआ। इससे नवाब के दरबार तक काशीनाथ मिश्र की पहुँच होने लगी। दुर्भाग्य से रक्षा के लिये जहाँ नवाब मौलानाओं और पीरों के दिये गण्ड तावीज़ व्यवहार में लाते थे वहाँ पण्डित काशीनाथ मिश्र भी उनके लिये महामृत्युञ्जय मंत्र का जप कर कवच तैयार करते थे। मिश्र जी को सल्तनत की ओर से जागीर मिली थी और गोल दरवाज़े के समीप कहीं उनकी हवेली भी थी। हवेली इतिहास के अथाह गर्भ में छिप गई।

चौक में रहने वाले मिश्र वंश के ब्राह्मण स्थान की खोज में शनैः-शनैः नई बस्तियों की ओर बढ़ने लगे। रग्घू महाराज के पिता वज़ीरगंज में रहते थे। उनका जैसा-तैसा अपना कच्चा मकान था। रग्घू

महाराज के एक बड़े भाई बिन्दू महाराज अब भी वहीं रहते हैं। पुरोहिती और ज्योतिष का वंशागात पेशा वे अब भी सम्भाले हैं। भगवान की दया से मिश्र परिवार की फूलती-फलती संतती के लिये उस संकुचित घरौन्दे में पर्याप्त स्थान न रहा। रग्घू महाराज के तीन भाई अपने स्त्री और सन्तान लेकर जीविका और स्थान की खोज में जाने कहाँ-कहाँ चले गये। रग्घू महाराज आकर टिके अहियागंज की एक गली में।

गली कच्ची थी और रग्घू महाराज के सौभाग्य से वह कभी पक्की न बन पाई। इसीसे चवन्नी माहवार पर ली हुई उनकी कोठरी का किराया भी पच्चीस बरस में दो रुपये महावार से अधिक न बढ़ सका।

रग्घू महाराज के पुरखों से कथा चली आती है कि नवाब वाजिद-अली के सूबेदार अममतअली खाँ का श्राप पं० काशीनाथ मिश्र ने तोड़ दिया इससे देवी उनसे क्रुद्ध हो गई। निस्सन्तती का श्राप उन्ही पर आ पड़ा। एक लड़का उनके था और फिर कोई सन्तान न हुई। और लड़के के युवा हो जाने पर भी वह निस्सन्तान रहा। काशीनाथ महाराज ने देवी की अराधना की। देवी ने साक्षात दर्शन दे आज्ञा दी—'तूने म्लेच्छ का शाप तोड़ा है। तुझसे एक-एक सन्तान का मूल्य सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन लूँगी'।

काशी महाराज ने देवी की आज्ञा पूर्ण की। उनके पोता उत्पन्न हुआ। तब से वंशपरम्परा की रक्षा के लिये पं० काशीनाथ मिश्र के वंश में प्रत्येक सन्तान के जन्म पर सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का नियम स्थिर हुआ। इस नियम के फल से काशीनाथ का वंश खूब समृद्ध हुआ। देवी के आर्शीवाद से एक-एक पुत्र के दस-दस बारह-बारह सन्तान हुये।

समय के परिवर्तन से सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का रूप बदल गया। वह सन्तान जन्म के समय अग्नि में सौ आहुति देने

और ब्राह्मणों को सौ कौर खिलाने के रूप में परिणित हो गया। समय और बदला और काशीनाथ के वंश में प्रत्येक सन्तान के जन्म के समय भविष्य में माता की बांझपैन से रक्षा करने के लिये सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का रूप अग्नि में एक सौ दाने जौ तिल डाल कर एक सौ दाना चावल का गौरैया को खिलाने का टोना मात्र रह गया। अहियागंज की कच्ची गली में रग्घू महाराज के घर प्रचीन गौरव का यही रूप शेष था।

परन्तु देवता तो द्रव्य के भूखे नहीं, भावना के ही भूखे होते हैं। रग्घू महाराज के घर में भावना के इस अत्यन्त संक्षिप्त रूप का प्रभाव ही यथेष्ट था। घर में दारिद्र्य होने पर भी भगवान की दया थी। स्थान और भोजन वस्त्र पर्याप्त न मिलने पर भी मंगल-सूचक ढोलकी की ताल उस घरौंदे से प्रायः सुनाई देती ही रहती। कभी दूसरे वर्ष और कभी बरस बीतते ही पास-पड़ोस से अहीरन, काछिन और नाउन उनके घर घिर आतीं और कौतुक पूर्ण लज्जा से मुख के सामने आँचल कर चंचल नेत्रों से उन्हें सम्बोधन करती :—'हाय भैय्या, भौजी के लिये हरीरा-वरीरा कुछ नहीं लाओगे क्या ?'

सन्तान जन्म के उस आल्हाद और उत्सव के क्षण में रग्घू महाराज श्रम और भूख से अकाल में ढीले पड़ गये कंधों में गर्दन लटकाये, आँखे छिपाते, हाथ में लाल अंगोछा लिये, गली में बहते कीच की धार के दोनों ओर कदम रखते बड़बड़ाते चले जाते—'ससुर जाने का परछावाँ पड़े से ही पेट हो जाता है...... !'

दसवीं सन्तान के समय तो क्षोभ के आवेश में लोकलाज भी डूब गई। बूढ़ी अहीरन चुनिया ने पोपले मुँह से हरीरे की दिल्लगी की तो महाराज उबल पड़े, क्या कहत हो चुनिया तुमऊ, ससुर कुतिया सी चैत के चैत ब्याये जात है, रोज-रोज हरीरा धरा है परन्तु कुल की रीति से बाँझ पन का निवारक सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का

टोना किया ही गया। यहाँ पहलों को ही टुकड़ा नहीं जुड़ रहा।'

महाराज के घर सन्तान होने का समाचार जैसे-तैसे प्रेस भी पहुँच जाता। बधाइयों की बौछार होने लगती। महाराज कभी झेंपते कभी झल्लाते। लोग पूछते—'अरे महाराज, बताओ तो ऐसा क्या खाते हो ?' और मसखरे बोल उठते—'अरे बड़े-बड़े कुश्ते मालूम हैं महाराज को' रग्घू झुंझलाकर गाली पर आ जाते।

बात घूम फिर कर महाराजिन के कान तक पहुँच जाती और वे अपने अपराध के लिये बेबस चुप रह जातीं। परन्तु भगवान के दिये को कौन टाल सकता है। ग्यारहवीं सन्तान भी महाराजिन की कोख से हुई ही और देवी का टोना फिर भी किया गया, कुल की रीति थी।

दैव की दया से महाराज की ग्यारह में आठ सन्तान जीवित थीं, पाँच लड़के और तीन लड़कियाँ। महाराज ने जैसे तैसे दो लड़कियाँ ब्याह दी थीं। परन्तु बड़ी लड़की विधवा हो ससुराल के सन्ताप से गोद में बरस भर की लड़की लिये रोती हुई बाप के यहाँ लौट आई। दोनों बड़े लड़कों के ब्याह भी होगये थे। स्वयम् महाराज को इतनी जल्दी न थी परन्तु इतने ऊँचे कुल में अपनी कन्या दे पुण्य कमाने वाले सद्विप्रों की कमी न थी। इस लिये बहुत ठहराते-थमाते भी दोनो बड़े लड़कों की बहुएँ आचुकी थीं और भगवान की दया और देवी के टोने के बल से महाराजिन के ग्यारवीं सन्तान होने से पहले ही उन्होंने पोते का मुख देखी।

सन् १९४४ से भयंकर अन्न, वस्त्र और स्थान का दुष्काल भारत ने कभी नहीं देखा। महाराज के घर बरस भर से ज्वार और बाजरा ही आ रहा था और वह भी एक रुपये का अंगोछे में बँध कर चार सेर के भाव आता। वस्त्र का यह हाल कि छः पैसे गज की चीज़ रुपये गज़ पा जाने तो बजाज को आसीस देते। शरीर की खाल में लगे खोंचे से अधिक पीड़ा देता था कपड़े में लग गया खोंचा। मजबूर हो

महाराज चीथड़े वाले के यहाँ से टुकड़े चुन-चुनकर लाये कि किसी तरह औरतों की कमर पर कपड़ा रहे।

घर नाम के उस घरौंदे में एक भीतर की और एक बाहर की कोठरी थी। उसी में सब परिवार समाया रहता। समाया ऐसे रहता जैसे खूब फला फूला पौधा गमले में समाया रहता है—जड़ गमले के भीतर दबी रहती है और शाखायें और पत्ते आकाश में फैले रहते हैं। वैसे ही परिवार का सम्बन्ध घर की कोठरियों से था, वर्ना यों दिन में बच्चे जाने कहाँ बिखरे रहते। स्त्रियाँ गली के कोने पर नीम के नीचे या दीवारों की छांव में समय बिता देतीं। गरमी की रात में सब लोग टाट-बोरी का टुकड़ा ले गली में बिछ जाते। अलबत्ता बरसात और माघ-पूस के जाड़े में उन कोठरियों में बर्सात में फूट आये कीड़ों का दृश्य बन जाता। अंधेरे में दिखाई कुछ देता न था परन्तु अवस्था वही होती जैसे बर्सात में धरती से गिजाइयों के फूट आने पर होती है; किसी की कमर पर किसी का सिर और किसी के पेट पर किसी के पांव। बच्चों में मार-पीट हो जाती। दोनों बहुयें गोद के बच्चों को चिपकाये सास की ओट में दीवार से चिपक कर सो जातीं। इस पर भी भगवान जब देते हैं तो छप्पर फाड कर देते हैं।

पूस में छोटी बहू की गोद फिर हरी हो गई। मंगल सूचक ढोलक बजी। महाराज किसी तरह ढीले कंधों में गरदन लटका कर पोते के जन्म के समय भी देवी का टोना करने बैठे। उनके हाथ शिथिल थे और मन बुझा हुआ। परन्तु पोते के जन्म का सगुन कैसे न करते। महाराजिन बिखरे जर्जर शरीर को फटी धोती में समेटे बैठी सतर्कता से देवी के टोने का पूर्ण किया जाना देख रही थीं। आठ दस आने का बायना भी बंटा। महाराज जैसे अपने शरीर का मांस चुटकियों से तोड़-तोड़ दे रहे हों।

रग्घू महाराज को आठ रुपये महँगाई भत्ता मिलने लगा था।

पर उससे क्या होता ? बारह प्राणियों के पेट तेंतीस रुपये में क्या भरते, जब ज्वार बाजरा चार सेर का मिल रहा हो ? यों राशन कार्ड बनाने वाले मुंशीजी ने ब्राह्मण पर दया कर सात की जगह कार्ड में दस बालिग लिख दिये थे। परन्तु उतना गल्ला खरीदने को रकम कहाँ थी ? सो महाराज अपने कार्ड पर प्रेस के मालिक बाबूजी की गैय्या के लिये अन्न खरीद देते। और आदमी जबतक जिन्दा है शरीर के कुछ भाग पर कपड़ा भी चाहिये ही। आखिर महाराज ने प्रेस में चिरौरी कर बड़े लड़के को प्रेस में अठारह रुपये पर डिस्ट्रीब्यूटर करा लिया। महाराज ब्रह्म तेज से शरीर के कष्टों को झेले जा रहे थे परन्तु छोटा लड़का माधो कलयुगी सन्तान निकला। एक दिन घर से लापता होगया। जाने कहाँ चला गया ? अहमदाबाद की किसी मिल में कोरी का काम करने या फौज में भरती हो गया ?

महाराज कभी सोचते, जाने लड़के का क्या होगा ? यहाँ जैसे-तैसे दिन कट रहे थे परन्तु थे तो सब एक जगह। और कभी सोचते दो हाथ-पाँव भगवान के दिये हैं, किसी तरह पेट भर लेगा। यहाँ क्या मुँह भरने को कम है ? बड़ी बहू का खयाल आजाता, उसका फिर पैर भारी था……एक ओर तो राम जी भेज रहे हैं। ऐसी चिन्ताओं से महाराज हरदम खौखियाये रहते बल्कि सारा घर ही खौखियाया रहता जैसे लड़ाई के दिनों में मेले का अवसर आजाने पर किसी बड़े स्टेशन पर रेल के तीसरे दर्जे के डिब्बे में हालत होती है। हर कोई दूसरों को अपना शत्रु समझ नोंचने और धकेल देने में लगे हुआ। बच्चे एक दूसरे को और बहुयें और महाराजिन अपने बच्चों पर दांत पीसती रहतीं—राम जी तुझे उठा ले ! राम करे तेरे कीड़े पड़ें। और महाराज बिलबिला कर सभी को रामजी को सौंपने को तैय्यार हो जाते।

एक दिन मुँह अँधेरे ही महाराजिन ने ठेलकर जगाया—'कि नाऊन जमनी को तो बुलादो पिछवाड़े से, बहू को दर्द पूरे नहीं उठ

रहे हैं।' दिन चढ़ते-चढ़ते पास पड़ोस की बहुएँ और सासें घिर आईं। बड़ा लड़का झेंप के मारे कहीं खिसक गया। सब कुछ उन्हें ही करना था।

महाराज प्रेस जाने के लिये बदन पर कुर्ता पहन रहे थे कि महा-राजिन ने पुकारा—'अरे कहाँ जाते हो, तनिक ठहर जाओ। लड़का हुआ है—देवी का जग तो कर जाओ!'

महाराज का शरीर प्राय: निष्प्राण हो रहा था। 'हाँ' कर वह मुँह बाये खड़े रह गये। इतने में पड़ोस से ढोलक आगई और गाने की आवाज भी उठने लगी। अहीरन चुनिया ने उलझकर कहा—'अरे आवाज़ से गाओ! क्या हो रहा है तुम्हारे गलों को?' पड़ोसनों के चेहरे पर प्रसन्नता थी। महाराजिन का चेहरा मुर्झा रहा था।

महाराजिन मुँह से गीत कहतीं जल्दी में जौ-तिल और चावल के दाने बीस-बीस की ढेरी में पाँच-पाँच जगह गिन रहीं थी और महाराज झुकी कमर पर दोनों हाथ टिकाये कुछ सोच रहे थे। निश्चय करने के प्रयत्न में उनकी पीली लम्बी मूँछे जबड़ों के हिलने से हिल जातीं। वे मन में बेर-बेर कहे जाते थे—'नहीं बस अब और नहीं।' परन्तु मुख से कुछ कहने का दम न था।

महाराजिन एक कलुली में आग ले आईं और बोलीं—'कर दो न देवी का जग!'

महाराज को झिझकते देख आशंका से उन्होंने पूछा—'काहे?'

'हाँ होता है'—देवी के प्रकोप के भय से महाराज स्वयम भी अस्थिर हो रहे थे। दुविधा में उकडू बैठ गये। परन्तु हाथ जौ-तिल की ओर न बढ़े।

आशंका से महाराजिन की आंखें-फैल गईं—'काहे. अबेर किये दे रहे हो?'

'अबेर हो रही है' इस विचार से महाराज को जैसे कुछ सहारा

मिला परन्तु इनकार का साहस न था। टालने के लिये बोले—बहू तो ठीक है उसे देखो?'—फिर सिर खुजाया—'प्रेस में देर हो रही है।'

'हाँ तो देवी का जग तो करो! अबेर कितनी करदी।' चेंचिया कर महाराजिन ने सचेत किया।

'हाँ तो तुम गाओ तो!'—महाराज ने कहा और सहसा उठ कर घर से बाहर हो प्रेस की ओर चल पड़े।

महाराजिन का हृदय देवी के क्रोध के भय से धक से रह गया—'हाय क्या होगा?'

और महाराज फुर्ती से कदम बढ़ाये जा रहे थे।

पीछे से गीतों की आवाज़ ऊँची हो रही थी और महाराजिन की पुकार सुनाई दे रही थी।

महाराज चाहते थे, गीतों के स्वर से अधिक तीव्र गति से वे उस भय से भाग जांय……किसी तरह देवी के बरदान से बच जाँय।

१०

इस टोपी को सलाम—

गरमी से परेशान हो कर या स्वास्थ्य के लिये पहाड़ जाने वालों से नैनीताल की रौनक नहीं होती। ऐसे लोग ओंठ भींचकर नाक से लम्बी साँस लेने की कोशिश करते, हाथ में छड़ी लिये सूनी सड़कों पर चहल कदमी करते दिखाई देंगे या अखबार, पुस्तक लिये पलंग या कुर्सी पर पड़े रहेंगे। बहुत हुआ, झील के किनारे जा बेंच पर बैठ, दूसरों का मनोविनोद देख अपना दिल बहला लेंगे।

गरमी के मौसिम में गरमी तो होती है। लेकिन साहबियत के रिवाज़ से पहले पहाड़ कौन जाता था? अंग्रेजों को गरमी ज़्यादा सताती है। इसलिये गरमी से अधिक परेशान होना साहबियत या बड़प्पन का चिह्न हो गया है। इसके अलावा नई सभ्यता या साहबियत के विलास वहीं होंगे जहाँ साहब होंगे। गरमियों में साहब और बड़े आदमी दूर-दूर से सिमट कर 'हिल स्टेशनों' (मंसूरी-नैनीताल) में इकट्ठे होते हैं और वहाँ साहबियत के विलास के अखाड़े बन जाते हैं। शौक रखने वाले दूर-दूर से आ कर वहाँ जुटते हैं। बरस भर की

उमंग महीने-पन्द्रह दिन में यहाँ आ कर पूरी करते हैं। जैसे बरात में जाने के लिये या नौकरी पाने की आशा में 'इण्टरव्यू' करने जाते समय पोशाक और सामान का चुनाव किया जाता है, कभी-कभी उधार भी ले लिया जाता है, वैसे ही नैनीताल के सम्बन्ध में भी समझिये।

मुरारी नैनीताल का ऐसा ही यात्री था।

दोपहर से ही विचार था कि साँझ को अपने अतिथि मित्र खत्री के साथ 'कैपिटल' में सिनेमा देखने जायगा। इसलिये समय से शेव कर उसने अचकन, चूड़ीदार पायजामा और तीखी नोक की गाँधी टोपी पहनी। उसके पुष्ट, चौड़े सीने पर अचकन सूट से कहीं अधिक जँचती भी थी। तल्लीताल से मल्लीताल को रवाना हुये। खत्री भी खूब जँच रहा था।

बाजार की उतराई उतर, झील के सामने डाकखाने के पास पहुँचे, तो आगे रिक्शाओं ने राह रोक रखी थी। उस जगह प्रायः ऐसा ही जमघट हो जाता है। दाहिनी ओर ऊपर के बँगलों और आर० ए० एफ० के साहब लोग क्लब से उतरते हैं। समीप ही नीचे से आने वाली मोटरों का अड्डा है। और भी कई सड़कें वहीं आकर माल रोड में मिलती हैं। जहाँ साहब लोगों का, विशेष कर अमेरिकन और गोरे लोगों का झुण्ड रिक्शेवालों ने देखा, अपने-अपने रिक्शे ले कर झपटते हैं, जैसे गुड़ की डली पर मक्खियाँ टूट पड़ती हैं। रिक्शे भिड़ जाते हैं और राह बन्द हो जाती है।

ऐसा ही हाल मुरारी और खत्री ने सामने देखा। और देखा—बीच में तीन गोरे घिरे थे और पाँच छः रिक्शे आगे-पीछे आपस में भिड़े थे। रिक्शाकुली गोरों का सामान खींच-खाँचकर चिल्ला रहे थे—'हजूर इधर! साहब इधर! हमने पेले कहा! हजूर हमने पेले! साब, ये है रिक्शा! इसमें रक्खो!' जैसे कुत्तों का झुण्ड किसी हड्डी पर टूट

पड़े, हर एक ले भागने के यत्न में और दूसरे उससे झपट लेने की कोशिश में ! सभी कुली साहबों की सेवा के लिये लालायित आपस में झगड़ रहे थे।

यों खसोटे जाने से एक गोरा बौखला उठा। वह कुलियों को थप्पड़, घूँसे मार कर परे हटाने की कोशिश करने लगा। फिर जैसे किसी गधे या भैंसे को हाथ से चोट देना व्यर्थ मालूम होता है, गोरे ने अपने भारी फौजी बूट से कुलियों को मार कर पीछे हटाने की कोशिश आरम्भ की। परन्तु उलझे हुए रिक्शे तुरन्त तितर-बितर कैसे हो जाते ? और साहब का क्रोध बढ़ता जाने के कारण उसके हाथ-पाँव तेजी से चलते जा रहे थे।

साहब की सेवा के लिये आतुर कुली एक हाथ से सिर बचाने की कोशिश करते, पीठ पर मार खाते हुये भागने की राह ढूँढ रहे थे परन्तु उलझ जाने के कारण निकल नहीं पा रहे थे।

देखकर मुरारी का खून सिर में चढ़ गया। खत्री को सम्बोधन कर उसने अंग्रेजी में कहा—'यह क्या जुल्म है ? गोरे हिन्दुस्तानियों को ऐसे पीट रहे हैं !········यही कांग्रेस गवर्नमेन्ट है ?'

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना, वह कुलियों के झुण्ड में घुस बौखलाये हुये गोरे के सामने जा खड़ा हुआ और ऊँचे स्वर में अँग्रेजी में बोला—'किसी को मारने का हक किसी को नहीं है। तुम जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर सकते हो !'

खत्री भी उसके साथ-साथ था।

गोरे के हाथ-पाँव रुक गये। उसने मुरारी और खत्री को सिर से पाँव तक जाँचा और फिर अपनी सफ़ाई देने के लिये उँगलियाँ नचा-नचा कर गोराशाही अँग्रेज़ी में बहुत-कुछ कह गया। उसके साथी गोरे भी बोलने लगे।

बी० ए० तक अँग्रेजी पढ़ने के बावजूद उस अँग्रेज़ी का कुछ भी

अर्थ मुरारी की समझ में न आया। उसने फिर किसी को मारने-पीटने के अधिकार और पुलीस से शिकायत करने के सम्बन्ध में अपनी बात दोहराई। खत्री ने भी वही कहा। गोरे एक ओर हट गये और फिर 'रिक्शा, रिक्शा,' पुकारने लगे। रिक्शे तुरन्त आ गये और शायद वही कुली सब से पहले आये जिन्होंने थप्पड़, घूँसे और जूते खाये थे।

गोरे तो रिक्शों में बैठ कर चले गये परन्तु मुरारी के तन-मन में आग लग गई। झील के साथ-साथ चलते हुये उसने पुलीस को गाली दे कर कहा—'यह ······इन अपने बाप गोरों से ऐसा डरते हैं कि कभी कुछ न कहेंगे।''

'कहेंगे क्या?' खत्री ने उत्तर दिया—'पुलीस वाले अँग्रेज़ सरकार के नौकर हैं कि हिन्दुस्तानियों के? इन्हें इन्साफ से क्या मतलब?'

ग्लानि के स्वर में मुरारी बोला—'यह साले रिक्शे वाले खुद जानवर हैं। इनमें जरा भी इनसानियत हो तो गोरों को कभी रिक्शा पर बैठायें ही ·······'

'रिक्शेवाले ही क्या!' खत्री ने टोक दिया—'अरे, जहाँ देखो यही हाल है। कहीं किसी होटल में जा कर देख लो! ये हिन्दुस्तानी बैरे बड़े-से-बड़े हिन्दुस्तानियों को छोड़ कर टुच्चे-टुच्चे गोरों का ख्याल करेंगे! उन्हें मतलब रहता है टिप (इनाम) से। हिन्दुस्तानी चाहे ज़्यादा भी दें लेकिन उनके दिमाग में तो साहब की खुशामद इतनी भर गई है कि कोई क्या करे?'

मुरारी ने लम्बी साँस लेकर कहा—'अरे, यही न रहे तो स्वराज्य ही न मिल जाय। असहयोग का मतलब और है क्या? लेकिन हो भी तो?'

'हो कैसे ?' खत्री ने उत्तर दिया—'अँग्रेजों ने सब को अलग-अलग खरीद रखा है। इसी देश के पैसे से इस देश के आदमियों को खरीद रखा है। एक-दूसरे का गला काट कर अँग्रेजों की जूती चाटते हैं कि मैं बड़ा बन जाऊँ। हिन्दुस्तानियत के ख्याल से कोई सोचता ही नहीं ?'

झील की हिलोरें लेती सतह पर दृष्टि दौड़ाते हुये, मन के क्रोध से होंठ काट कर मुरारी बोला—'सब को पेट की पड़ी है ? ऐसे कहीं स्वराज्य मिलता है ? पहले होना चाहिये राष्ट्रीयता का ख्याल ?'

दोनों मित्र राष्ट्रीयता के भाव की आवश्यकता पर अँग्रेज़ी में बहस करते चले जा रहे थे। अपनी भाषा में ऐसे शब्दों के व्यवहार का अभ्यास नहीं। ऐसी बातें प्रायः अँग्रेज़ी के अखबारों और पुस्तकों में ही रहती हैं। हिन्दुस्तानी में ऐसे विचार प्रकट करने से बात में कुछ जोर नहीं आता।

आगे बढ़े तो याट-क्लब की इमारत आ गई।

खत्री ने कहा—'सुनते हैं, इस क्लब का मेम्बर कोई हिन्दुस्तानी नहीं बन सकता। क्या बदतमीज़ी है ?'

मुरारी ने उत्तर दिया—'अरे, भाई, सुनते हैं, कोई जमाना था, जब इस नैनीताल में हिन्दुस्तानियों को इस माल रोड पर चलने की इजाज़त नहीं थी। हिन्दुस्तानी निचली सड़क पर जानवरों के साथ चलते थे। अब हिन्दुस्तानी मिनिस्टरों की मोटरें इस सड़क पर जाती देख अँग्रेज़ों के दिल पर साँप लोट जाता होगा। काँग्रेस गवर्नमेंट को चाहिये कि इसके सामने एक ऐसा क्लब बनाये जिसमें अँग्रेज़ों को घुसने की इजाजत न हो।'

इस प्रकार की बातों से दोनों के मन कुछ ऐसे खिन्न हो गये कि सिनेमा जाने की इच्छा न रही। मुरारी की बाँहें अभी फड़क रही

थी। उसने सुझाया—'चल कर कैपिटल के रेस्तराँ में अँग्रेज़ों के मुक़ाबिले में बैठे—यह क्या कि जितनी बढ़िया जगहें हैं, सब पर सालों ने कब्जा कर रखा है ! देखें, किसके कलेजे में दम है ? रणवीर और निगम को बुला लें। आज जो होना है हो जाय ! देखा जायगा।'

मुरारी और खत्री दोनों ही मारते खाँ थे। रणवीर और निगम उनसे भी दो कदम आगे थे। चारों मित्र एक साथ कैपिटल में जगह घेर कर जा बैठे। पहले चाय मँगाई और उसके बाद कुछ दूसरी चीजें। कोई अँग्रेज आता तो उसकी ओर घूर कर चुनौती की दृष्टि से देखते। किसी ने उनकी दृष्टि की परवाह न की। किसी ने देखा तो जान-पहचान समझ, मुस्करा कर 'गुड ईवनिंग' कर सज्जनता प्रकट करदी।

बाहर कुछ बूँदाबाँदी होने लगी थी। इससे यों भी बैठे रहे। दो घण्टे बीत गये। मन का आवेश कुछ हल्का हुआ। खत्री ने कहा—'अब आये हैं तो सिनेमा का दूसरा शो देख कर ही लौटेंगे।'

निचली मंजिल में ही सिनेमा है। सब लोग गये और एक साथ बैठे। सिनेमा ख़त्म हो ही रहा था कि खत्री ने अपने साथियों को उठ चलने का संकेत किया—भीड़ के साथ निकलने पर रिक्शे नहीं मिलेंगे। सर्दी कड़ाके की पड़ रही थी।

सिनेमा के सामने पुलिस के हवलदार ने एक ओर रिक्शे और दूसरी ओर डाण्डियाँ लाइनों में लगवा दी थीं कि आपस में उलझें नहीं। पहले दो रिक्शों के समीप जा चारों मित्रों ने बैठना चाहा। इतने में खेल ख़त्म हो गया।

दोनों ही रिक्शों के कुली उन्हें ले जाने को तैयार न थे। मुरारी ने धमकाया—'चलना होगा ! चलेगा कैसे नहीं ?'

'हमारा रिक्शा लगा है, हजूर यह रिक्शा रिजब है!'

मुरारी ने फिर धमकाया—'नहीं, चलना होगा! उठाओ रिक्शा!' वह रिक्शे पर बैठने को हुआ।

कुली ने फिर एतराज किया—'नहीं, साहब, हम नहीं जायगा। हमारा रिक्शा गोरा साहब का रिजब है। तीन फुल्लीवाला (कँधे पर तीन स्टार लगाने वाला कैप्टेन) गोरा साहब का रिजब है।'

मुरारी का क्रोध सीमा लाँघ गया। गाली दे कर उसने कहा—.........'चलता है कि नहीं? तेरे तीन फुल्ली वाले गोरे की ऐसी-तैसी!'

रणवीर का हाथ चल गया। उसने एतराज करने वाले कुली को दो थप्पड़ लगा कमर में एक लात जमाई। मुरारी ने दूसरे कुली को दो चपत दिये। साहब लोग भी चले आ रहे थे और रिक्शे वाले उनके सामने अपने रिक्शे जबरदस्ती किये दे रहे थे। अँग्रेज़ों के सम्मुख अपनी यह उपेक्षा और अपमान उनके लिये असह्य था। चारों आदमी दोनों रिक्शों में दो-दो करके ज़बरदस्ती बैठ गये। दोनों रिक्शों के कुली असन्तोष से बड़बड़ाते हुये मार के डर से अपने रिक्शे ले सब से पहले दौड़ पड़े।

मल्लीताल से तल्लीताल पहुँच, बाजार की चढ़ाई चढ़, रिक्शा मुरारी के मकान पर पहुँचा। गोरे साहबों के सामने मान-प्रतिष्ठा-सहित सबसे पहले रिक्शा ले कर चले आने से मुरारी का मन संतुष्ट था। एक रुपया रिक्शे का मुनासिब किराया उसने दिया और दो रुपये और दे कर कुलियों से कहा—'यह लो इनाम! समझे! अब अँग्रेज़ साहब को अपने रिक्शे पर मत चढ़ाना! हमेशा हिन्दुस्तानी साहब को रिक्शे पर चढ़ाओ! समझे! अब अँग्रेज़ का राज नहीं है, कांग्रेस का राज है! समझे! अब अँग्रेज़ की टोपी को सलाम मत करना!'

फिर अपनी टोपी की ओर उँगली से संकेत कर उसने कहा—'अब इस टोपी को सलाम करना ! समझे !'

'तीन फुन्नी वाले साहब' की सवारी न बन सकने का गिला कुलियों के मन में न रहा। बिजली के लैम्प की रोशनी में उसके माथे पर पसीने की बूँदें और आँखों में प्रसन्नता चमक रही थी। हाथ-जोड़, दाँत निकाल, कुलियों ने उत्तर दिया—'बौत ठीक है, साब ! हमारा तो ये भी माई बाप है वो भी माई-बाप है ! हजूर हम तो कुली आदमी हैं।'

मकान का तंग जीना चढ़ने से पहले मुरारी ने स्त्री के कंधे पर हाथ रख उत्साह से कहा—'भाई अपना राज अपना ही राज होता है। देखा, कितना फर्क पड़गया कांग्रेस सरकार होजाने से ?'

सत्य का मूल्य—

कौशम के समीप यमुना के पूर्वी तट पर दिनांक की पैतृक भूमि थी। भूमि परिवार के पालन के लिये पर्याप्त थी। हल, बैलों की जोड़ी, दो गाय और परीश्रम द्वारा भूमि से अन्न उत्पन्न करने के सभी साधन थे। भूमि की उपज का पंचमांश भूमि कर के रूप में ज्येष्ठक को दे उसका और स्त्री पुत्रों का निर्वाह दूसरे कृषकों की भांति हो जाता था। परन्तु वह सन्तुष्ट न था।

दिनांक के मन में तृष्णा थी। भोग के अधिक साधन संग्रह कर अधिक सम्पन्न और सुखी बनने का स्वप्न उसके मनमें समाया रहता। धन संचय कर अधिक भूमि मोल ले वह दूसरों से खेती कराने वाला भूमिपति बनना चाहता था। मिट्टी की दीवारों पर फूस से छाये अपने छप्पर के स्थान में वह एक बाग में पक्का प्रासाद बनाना चाहता था। अपने ग्राम के जुलाहे द्वारा बुने मोटे वस्त्रों के स्थान में वह मगध, कौशल, त्रिदिशा और कलिंग के रेशमी वस्त्र पहनना चाहता था। वह चाहता था

दासियां उसके शरीर पर चन्दन का लेप कर सिहल के मोतियों की शीतल मालायें उसके गले में पहनाये, चन्दन के पंखे से उसे वायु करें। उसके केशों में अनेक ऋतुओं के अनुकूल सुगन्ध लगाई जाय। सवारी के लिये रथ हो। रथ सुन्दर रंगीन वस्त्रों से ढका हो। रथ के सुन्दर बैलों के सींग तेल से चिकने और काले हों। बैलों की पीठ पर कामदार झूलें पड़ी हों। सुख सम्पति के वे सभी साधन जो उसने विदिशा नगरी में अपनी कृषिका अन्न बेचने के लिये जाने पर देखे थे और जिन्हें पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व जाने वाले राजपथ पर महाश्रेष्ठियों के सार्थों में देखा था, उसकी महत्वाकांक्षा बन उसकी कल्पना में समाये थे।

इन साधनों को प्राप्त करने के लिये दिनांक ग्रीष्म, वर्षा और हेमंत ऋतुओं में सूर्योदय से सूर्यास्त तक निरंतर परीश्रम करता रहता। शरीर का कष्ट आशा की उमंग में अनुभव न होता। सम्पत्ति के विस्तार के लिये वह कुछ धन बटोर पाता कि भाग्य से वर्षा ऋतु में तटोंतक भरी गंगा में सैकड़ों योजन दूर होने वाली वर्षा का जल और बह आता। गंगा अपने तटों की मर्यादा उल्लंघन कर जाती। बाढ़ में दिनांक के छप्पर-छाजन बह जाते। कभी समय पर वर्षा न होने से उसकी खेती ऐसे सूख जाती कि उपज खेत में डाले गये बीज से भी कम रहती। ऐसी अवस्था में दिनांक अत्यन्त निराश हो जाता। परन्तु उसके अन-जाने में, उसके शरीर में जाने वाला प्रत्येक श्वास बाहर जाते समय निराशा का कुछ भाग ले जाता और जीवन का अवलम्ब और लक्ष्य आशा फिर जाग उठती। ऐसे ही संघर्षों में दिनांक प्रौढ़ावस्था तक पहुँच गया। उसकी आकांक्षा और कल्पना अपूर्ण ही रही।

युवावस्था में सुख और सम्पत्ति प्राप्त करने के दिनांक के प्रयत्न असफल होजाने पर प्रौढ़ावस्था में भी वह फिर वही प्रयत्न करने लगा। उसे आशा थी, जो कुछ वह स्वयम नहीं पा सका, उसकी

सन्तान पायेगी और वृद्धावस्था में वह अपने अन्तिम दिन सुख और विश्राम से बिता सकेगा। परन्तु इसी समय सम्पूर्ण नगरों, जनपदों और ग्रामों में समाचार फैलगया कि चक्रवर्ती, दिग्विजयी, सम्राट श्री हर्षवर्धन दिशाओं के अन्त तक पृथ्वी विजय कर निष्शत्रु हो तथागत भगवान बुद्ध के करुणा और त्याग के धर्म में दीक्षित हो, भिक्षु भेस धारण करने जा रहे हैं।

इस विचित्र समाचार से दिनांक की कल्पना और विचार क्षुब्ध हो गये। अपने खेतों में हल चलाते समय, निराई करते समय, जंगल से ईंधन बटोरते समय और रात में थक कर पुआल की चटाई पर बिछी कथरी पर लेटे हुये उसे घोड़े, पालकियों और रथों से घिरे, विशाल हाथी पर बैठे, चमचमाते रत्न जड़े मुकुट पहने सम्राट श्री हर्षवर्धन दिखाई देने लगते, जिनकी सम्पत्ति शक्ति और सुख के साधनों का अन्त नहीं, जिन्हें इच्छा करने से ही सब कुछ प्राप्त है, वही महाराज अपनी इच्छा से सबकुछ त्याग, भिक्षु के चीवर पहनने के लिये तथागत के त्याग धर्म में दीक्षित होंगे? और दिनांक को कल्पना में भिक्षु के गेरुआ चीवर पहने, हाथ में लोहे का भिक्षा पात्र लिये सिर मुण्डे भिक्षु का शान्त, सुखी चेहरा दिखाई देने लगता।

सम्राट श्री हर्ष की भक्ति तथागत के धर्म में होजाने के कारण तथागत के शिष्यों को विशेष प्रोत्साहन मिला। नित्य सहस्रों विद्वान भिक्षुओं का सत्कार राज्य कोष से होती। राज्य का अपरिमित धन सहस्रों बौद्ध भिक्षुओं से भरे मठों के लिये बहने लगा और सम्राट की उदारता का समाचार सुन पृथ्वी के कोने-कोने से गेरुआ वस्त्र धारण किये भिक्षुओं के दल सम्राट श्री हर्ष की राजधानी की ओर प्रवाहित होने लगे।

इन संसार त्यागी भिक्षुओं के लिये पुष्पउद्यानों से घिरे राजप्रासाद और पल्ली ग्राम में गोबर और खाद के ढेर से घिरे फूस के छप्पर

एक समान थे। यह भिक्षु अपने उपदेशामृत की करुणा, आकाश से बरसने वाले जल की भाँति समान रूप से सभी स्थानों में मनुष्य मात्र पर बरसाते थे। उनके प्रसन्न मुख मण्डलों पर दुख से मुक्ति और वैराग्य से प्राप्त शान्ति विराज रही थी। वे अपने आनन्द का भाग सभी को देने के लिये आतुर थे। वे उपदेश देते।

हे संसार के दुखी प्राणियो, राग के समान जलाने वाली दूसरी अग्नि नहीं। द्वेष के समान कलुषित करने वाला मल नहीं। पाँच स्कधों के समान दुख नहीं। शान्ति से बढ़ कर सुख नहीं। हे मनुष्यो, भूख सबसे बड़ा रोग है, संसार परम दुख है, यह जानने वाला ही निर्वाण का परम सुख पाता है 'सुसुखवत! जीवाम येन्स नो नत्थि'—अहो, हम लोगों के पास कुछ नहीं, और! हम कैसे सुख पूर्वक जीते हैं। हम आभास्वर देवताओं की तरह प्रीतिका भोजन करते हैं। हे कृषको, खेत का दोष तृण है वैसे ही मनुष्य का दोष इच्छा है। यह शरीर अनित्य है। यह संसार अनित्य है। अनित्य से पाया अनित्य क्या स्थिर होगा? माया को छोड़ो, ज्ञान को प्राप्त करो! —बोधिवृक्ष के नीचे तप कर तथागत न यह ज्ञान प्राप्त किया है। दुखों से मुक्ति पाने के लिये बुद्ध की शरण आवो। धर्म की शरण आवो! संघ की शरण आवो!'

प्रसन्न मुख और शांतचित्त भिक्षुओं को देख और उनका उपदेश सुन दिनांक को अत्यन्त ग्लानि हुई। उसके मनमें पश्चाताप हुआ कि सम्पूर्ण जीवन सुख की आशा में वह दुख के कारण बटोरने के लिये दुख के मार्ग पर ही चलता रहा। भिक्षुओं के उपदेश से वह अनन्त सुख प्राप्ति की बात सोचने लगा। ऐसे सुख को पाने का उपाय जिसकी तुलना में चक्रवर्ती महाराजाधिराज सम्राट की अतुल सम्पति और शक्ति भी तुच्छ थी। भिक्षुओं के मुख से सुनी तथागत के जीवन की कथाओं और उपदेशों का मनन करते रहने से दिनांक की कल्पना में

सदा ही बोधि वृक्ष की छाया में समाधिस्थ, प्रकाश पुंज से घिरा बोधिसत्व का रूप दिखाई देता रहता।

जिस सुख को दिनांक सम्पूर्ण जीवन के प्रयत्न से न पा सका, उससे भी महान सुख को केवल जान लेने (ज्ञान) के उपाय मात्र से पा लेने के विश्वास से वह अत्यन्त उत्साहित हो उठा। उस परम ज्ञान को दूसरे के मुख द्वारा और दुर्गम तर्क से प्राप्त करने की अपेक्षा उसने अपने ही तप से पाने का निश्चय किया। वैराग्य की ओर प्रवृत्ति और ज्ञान की तृष्णा से दिनांक अपनी भूमि की खेती और परिवार की चिन्ता का बोझ अपने किशोर बालकों और अपनी प्रौढ़ा स्त्री पर छोड़, तप द्वारा परमज्ञान के असीम सुख की खोज में चल पड़ा।

गंगा के निर्जन तट पर एकान्त देख एक गूलर के वृक्ष के नीचे उसने समाधि लगा ली। उसने निश्चय किया, परम ज्ञान द्वारा प्राप्त परम सुख और निर्वाण में ही उसकी समाधि परिवर्तित हो जायगी।

निर्जन गंगा तट पर सूर्यास्त होगया। गूलर के वृक्ष पर घोंसला बनाये सैकड़ों पक्षियों के कलरव से कुछ समय के लिये वह स्थान गूंज उठा। चारों ओर फैले पतझर के जंगल की वायु सूर्य की किरणों से पायी ऊष्मा खो शीतल हो गई। घने अंधकार में अनेक शृगाल और दूसरे जीव गंगा का जल पी गूलर के नीचे गिरे फल को खाने के लिये घूमने लगे। परन्तु दिनांक पद्मासन से बैठा निरंतर ध्यान करता रहा—सत्य क्या है? परम सुख क्या है? और दुखों से मुक्ति कैसे हो? फिर सूर्योदय से पूर्व वृक्ष पर पक्षियों का कोलाहल हुआ। सूर्य की कोमल किरणों ने उग्रता ग्रहण की। मध्यान्ह हुआ। फिर सूर्य पश्चिम की ओर ढलने लगा। परिवर्तन के इस चक्र में समाधि में स्थिर दिनांक परिवर्तन से मुक्ति अमरत्व को खोज रहा था।

इस प्रकार सोलह सूर्योदय और सत्रह सूर्यास्त हो गये। दिनांक

दृढ़ता से समाधि में स्थिर ज्ञान के प्रकाश का आह्वान और प्रतीक्षा करता रहा। शारीरिक दुखों की अनुभूतियाँ अत्यन्त उग्र हुई और फिर क्षीण होने लगीं। दिनांक ने संतोष अनुभव किया वह दुखों से परास्त न होकर दुखों की अनुभूति से मुक्ति लाभ कर रहा है। वह निरंतर ध्यान मग्न था। परन्तु उसकी ध्यान और विचार की शक्ति निश्क्रिय सी होती जा रही थी। वह बेसुध सा होता जा रहा था...।

सुध आने पर उसने देखा—उसके पांव समाधि के आसन में बंधे रहने पर भी उसकी पीठ लुढ़क कर वृक्ष के तने से सट गई है और वैसे ही उसका सिर भी। ज्ञान का प्रकाश अभी वह देख न पाया था। अपनी असफलता से उसे ग्लानि हुई। उसने स्वीकार किया वह विचार और ध्यान में असमर्थ होगया है। परन्तु विचार, ध्यान और तप द्वारा ज्ञान प्राप्ति का उसका निश्चय दृढ़ था। उसने मनको समझाया—विचार और ध्यान के लिये सामर्थ्य पाना आवश्यक है। शरीर के निश्क्रिय और निश्चेष्ट होजाने पर वह विचार और ध्यान कैसे करेगा?

स्वयम ही उसके हाथ फैल गये और शरीर को सामर्थ्य देने के लिये वह पृथ्वी पर गिरे गूलर के फल उठा मुख में ले चूसने लगा। बहुत देर तक ऐसा करने पर विचार सकने का सामर्थ्य उसने पाया। उसे जान पड़ा, दुराग्रह से अपनी विचार शक्ति को नष्ट करना व्यर्थ है। जो है, उसे बलपूर्वक अस्वीकार कर, कल्पना से कुछ नयी बात निकालने का दुराग्रह भी व्यर्थ है। दुख से भय ही दुख है। बहुत समय तक गूलर के फलों का रस चूसता वह इसी प्रकार के विचारों में डूबा रहा और फिर व्यर्थ कष्ट सहन द्वारा वास्तव को कल्पना में अवास्तव मान लेने का विचार छोड़ चल दिया।

× × ×

दिनांक ने देखा। प्रतिदिन और रात्रि गंगा के वक्ष पर पाल उड़ाती सैकड़ों नावें गङ्गा-यमुना के संगम की ओर चली जा रही थीं उसने राज

मार्ग पर भी प्रत्येक ग्राम जन पद और नगर से पथिकों की धारायें आ-आकर नदियों के संगम की ओर बहने वाले जन प्रवाह में सम्मिलित होते देखीं। उसने कौतुहल से इस विषय में यात्रियों से प्रश्न किया। उत्तर में यात्रियों ने भी विस्मय से प्रश्न किया—क्या तुम नहीं जानते चक्रवर्ती सम्राट श्री हर्षवर्धन ने गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर पुण्य पर्व का संयोजन किया है। इस सत्संग में धर्म के तत्वों का निश्चय होगा और इस पर्व पर सम्राट अपनी अतुल द्रव्य सम्पत्ति भिक्षुकों को दान कर देंगे। इस दान के पश्चात पृथ्वी पर फिर कोई याचक न रह जायगा।

दिनांक भी रथों, पालकियों और दूसरी सवारियों से भरे राज मार्ग पर सहस्रों सम्पन्न गृहस्थियों, गेरुआ वस्त्र धारण किये भिक्षुओं और द्रव्याभिलाषी साधारण दीन जन के साथ सङ्गम की ओर चल दिया।

दिनांक ने देखा—गङ्गा-यमुना के सङ्गम की दक्षिण तट की रेती पर प्राय: एक योजन तक मनुष्य ही मनुष्य फैले हुये थे। पृथ्वी के आदि-अन्त से नाना वर्ण और रूप का जन समुदाय धर्म का तत्त्व जानने के लिये उत्सुक हो सङ्गम पर आ घिरा था। देश विदेश के व्यापारी भी अपने अद्भुत और विचित्र पदार्थ ले, आकर्षक दुकानें सजाये संसार से विरक्त होते धर्माभिलाषियों को संसार की ओर आकर्षित करने का यत्न कर रहे थे। समारोह के बीचोंबीच एक विशाल पण्डाल था। जिसमें दस सहस्र भिक्षुओं के एक साथ बौद्ध सूत्रों का पाठ करने की ध्वनि से आकाश आठों पहर गूँजता रहता था।

समारोह के विस्तार में सब ओर स्थान-स्थान पर तथागत बोधि सत्व की जीवन गाथा के चित्र, उनके जीवन के उपदेशों को प्रचारित करते हुये बने थे। स्थान-स्थान पर बौद्ध धर्म के नियमों और करुणा धर्म पालन करने की राज-आज्ञाओं का उल्लेख बहुत बड़ी-बड़ी शिलाओं और भीतों पर सम्राट श्री हर्षवर्धन की मुद्रा सहित किया

गया था। पण्डाल के तोरण पर नगाड़ों की चोट से निरंतर घोषणा हो रही थी:—चक्रवर्ती सम्राट श्री हर्ष द्वारा स्वीकृत तथागत बुद्ध के उपदेश के हीनयान मार्ग के सम्बन्ध में जिस किसी व्यक्ति को सन्देह अथवा शंका हो वह राजगुरू महाविद्वान चीनी यात्री अर्हत इग्मिंग से शास्त्रार्थ करे! शास्त्रार्थ में विजयी होने वाले को सम्राट की ओर से पण्डाल में बना स्वर्ण मुद्राओं का पर्वत और असंख्य बहुमूल्य रत्नों की भेंट दी जायगी और शास्त्रार्थ में पराजित होने वाले का सिर, सद्धर्म की निन्दा के अपराध में, कृपाण से काट कर दिया जायगा। राज-आज्ञा से धर्म की निन्दा करने वालों का ह्रास हो कर सब ओर धर्म की विजय हो रही थी।

दिनांक भी पण्डाल में गया। पण्डाल का तीन चौथाई भाग गेरुआ रंग का चीवर धारण किये भिक्षुओं से भरा था। उस्तरे से मुंडे भिक्षुओं के सिर ऐसे जान पड़ते थे जैसे गेरुआ मिट्टी पर कोरी हण्डियाँ दूर तक औंधा कर रख दी गई हों। एक चौथाई भाग में अनेक प्रकार के सुन्दर और कोमल आसनों पर रंगीन रेशमी वस्त्रों और आभूषणों से शृंगार किये सामन्तवर्ग और सम्पन्न श्रेष्ठि समाज आसीन था और उनके पीछे साधारण जन समुदाय। केन्द्र में ऊंचे मंच पर सोने के छत्र के नीचे, सोने के सिंहासन पर,चंवर धारी यवनियों और खड्गधारी शरीर रक्षकों से घिरे सम्राट ज्ञान की चिन्ता से गम्भीर मुख लिये बैठे थे। उनके सम्मुख स्वर्ण की चौकी पर कुशासन बिछाये अप्रतिम रूप के चीन देश वासी राज गुरु उपस्थित थे। एक ओर स्वर्ण मुद्राओं का पर्वत और रत्नों के थाल सजे थे। दूसरी ओर लाल वस्त्र धारण किये कंधे पर दीर्घ कृपाण लिये जल्लाद प्राण दण्ड देने के लिये उपस्थित था।

बौद्ध भिक्षुओं ने सूत्र पाठ किया और राजगुरू ने विचित्र उच्चारण से धर्मोपदेश दिया—असार को सार और सार को असार समझने

वाले, झूठे संकल्पों में संलग्न मनुष्य सार को नहीं प्राप्त कर सकते। ......मनुष्य जैसे बुलबुले को देखता है, जैसे मरुभूमि में जल के भ्रमको मिथ्या जानता है वैसे ही जो मनुष्य इस मायामय लोक को जानता है वही अमर होता है। तोरण पर नगाड़े की चोट से शास्त्रार्थ के लिये फिर चुनौती दी गई।

सामन्त वर्ग और सम्पन्न समाज के पीछे से ऊंचा परन्तु कांपता हुआ स्वर सुनाई दिया और लोगों ने देखा एक ग्रामीण बांह उठाकर कुछ कह रहा है।

व्यवस्था की रक्षा करने वाले शस्त्रधारी राज सेवक उस ग्रामीण दिनांक को राजसिंहासन के सम्मुख राजगुरु के आसन के समीप ले आये। ग्रामीण के पागलपन से विशाल सभा विस्मित रह गई।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री ने ग्रामीण से प्रश्न किया–'तुम राज गुरु से धर्म के तत्त्व पर शास्त्रार्थ अथवा शंका करोगे ?

दिनांक ने सिर झुका कर हामी भरी।

शास्त्रार्थ में पराजय का दण्ड मृत्यु है जानते हो ?—मंत्री ने चेतावनी दी।

दिनांक ने पुनः हामी भरी।

राजगुरु के समीप बैठे एक शिष्य ने राजगुरु की ओर से उनसे प्रश्न किया—'हे ग्रामीण तुम किस मत के अनुगामी हो; तुम्हारी प्रतिज्ञा क्या है ?'

दिनांक आंखे और ओंठ फैलाये मूक रह गया। ग्रामीण की इस जड़ता से भिक्षु समाज में उसकी अबोध धृष्टता के प्रति घृणा की मुस्कान फैल गई। नागरिक समाज में से कुछ ने मुस्करा दिया और कुछ के मुख पर भय मिली करुणा का भाव छा गया।

ग्रामीण को उत्साहित करने के लिये राजगुरु ने कृपा से मुस्करा कर प्रश्न किया–'हे सौम्य, तुम्हारी शंका क्या है ?'

सचेत हो दिनांक ने उत्तर दिया—'आप जो कहते हैं वह सत्य नहीं। यह संसार मिथ्या माया नहीं।'

राजगुरु के शिष्यने फिर प्रश्न किया—'आयुष्मान, तुम्हारी शंका के लिये शास्त्र का प्रमाण क्या है?

दिनांक को मूढ़ता से चुप देख राजगुरु ने पुनः सरल मुस्कान से उसे उत्साहित किया—'सौम्य, तुम्हारा तर्क, मत अथवा अनुभव क्या है?'

'ऐसा मैंने देखा है!' उत्तर दे दिनांक मूक रह गया।

सम्पूर्ण सभा भी इस विचित्र परिस्थिति में मौन थी और सम्राट अपने सिंहासन की पीठ से सहारा लिये बायें हाथ की बंद मुट्ठी पर ठोड़ी रखे इतनी सी बात कहने के लिये मृत्यु का भय न करने वाले साहसी ग्रामीण की ओर दृष्टि किये उसको अभिप्राय जानने का यत्न कर रहे थे।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री ने सम्राट की ओर देखा और ग्रामीण को सम्बोधन किया—'तुम जानते हो राजगुरु से शास्त्रार्थ में पराजय का दण्ड मृत्यु है। उसी दण्ड के तुम अधिकारी हो!'

लाल कपड़े पहने बधिक का हाथ अपनी कृपाण की मूठ पर दृढ़ हो गया। और खड्ग ने तनिक कांप कर तत्परता प्रकट की।

'परन्तु मैं पराजित नहीं हूँ!'—ग्रामीण दिनांक ने उत्तर दिया। सभा पर पुनः वितृष्णा भरी मुस्कान फिर गई।

राजगुरू के शिष्य ने पुनः प्रश्न किया—'हे सौम्य, यदि तुम पराजित नहीं हो तो अपनी युक्ति, तर्क और प्रमाण कहो!'

'यदि मेरा अज्ञान राजगुरू की विजय है तो दिनांक ने स्वर्ण और रत्नों की ओर उंगली से संकेत किया—इस मायामय असार द्रव्य को स्वीकार करना ही उनके उपदेश का पराजय है। यदि राजगुरू का उपदेश सत्य है तो यह मायामय असार द्रव्य मेरे लिये दें

और असार अनित्य जीवन से मुक्ति की ओर स्वयम जांये !'—दिनांक ने लाल कपड़े पहने बधिक की ओर संकेत किया । सभा में पहले भय का सन्नाटा और फिर कौतुहल पूर्ण परिहास की स्फूर्ति फिर गई । राज गुरू भी मुस्करा दिये।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री ने सम्राट के सम्मुख सिर नवाकर प्रार्थना की—'पृथ्वी पर न्याय के रक्षक चक्रवर्ती सम्राट श्री देव न्यायासन से आज्ञा दें !'

सम्राट ने मानों विचार तंद्रा से जाग उत्तर दिया—'इस विषय में पुनः विचार हो ! इस समय सभा भंग की जाय !'

× × ×

पराजय के लिये प्राणदण्ड की अवज्ञा कर परमज्ञानी अर्हत राजगुरू से शास्त्रार्थ करने का दुस्साहस करने वाले अबोध ग्रामीण का वृत्तान्त रात भरमें ही जन समुदाय में फैल गया । दूसरे दिन सम्राट की धर्मसभा में जनता टूट पड़ी । सम्राट के सिंहासन ग्रहण करने पर लोहे की शृङ्खला से बांधकर दिनांक को सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया गया । दिनांक के मुख पर निर्भय और शान्ति विराज रही थी ।

करुणा का व्रत लिये सम्राट रातभर इस अबोध ग्रामीण की बात सोचते रहे थे । राजमंत्रियों और राजगुरु को सम्बोधन कर सम्राट बोले —'अपराधी ने शास्त्रार्थ में पराजय नहीं पायी । क्योंकि वह शास्त्र से परिचित नहीं ।'

राजगुरु ने कृपाकी मुस्कान से सम्राट का समर्थन किया—'देव का वचन यथार्थ है । श्रीदेव न्याय का रूप हैं । श्रीदेव की कृपा अनन्त है । एक रात भर इस अबोध ग्रामीण ने अपने सिर पर मृत्युका खड्ग अनुभव किया है । इसके मूल्य स्वरूप देव इस अबोध को एक लक्ष मुद्रा दान देने की कृपा करें ।'

राजगुरु की उदारता से सभा अवाक रहगई । सम्राट संतोष और

करुणा से मुस्करा दिये। सब ओर से 'साधु-साधु, राजगुरु की जय हो !' की ध्वनि उठने लगी।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री के संकेत से प्रतिहारियों ने दिनांक को लोहे की सांकलों से मुक्त कर दिया। कोषाध्यक्ष ने आगे बढ़ एक लाख स्वर्ण मुद्रा की थैली प्रतिहारियों द्वारा सम्राट के सामने उपस्थित करदी और दिनांक को सम्बोधन कर कहा—'हे भाग्यशाली सौम्य, राजदान ग्रहण करने के लिये आगे बढ़ो।'

अपने ही स्थान पर खड़े रह दिनांक ने कर जोड़, सिर झुका विनय की—'पृथ्वी के पालक धर्मराज सम्राट क्षमा करें, सत्य का मूल्य मेरे प्राण हैं एक लाख मुद्रा नहीं।'

सम्राट ने विस्मय से राजगुरु की ओर देखा-राजगुरु का मुख विचार से अत्यन्त गम्भीर होगया था·········।

१२

सआदत—

छः बरस से इस कमरे में बैठता हूँ । इसके लाल फ़र्श पर अनेक प्रकार के जूते, चप्पल और नंगे पांव आते जाते हैं। कोई ऐसा चिन्ह शेष नहीं रहता जो किसी की याद दिला सके । परन्तु भीतर खुलने वाले दरवाज़े के समीप फर्श पर बिल्ली के पंजों के दो अमिट निशान हैं। जब तक फर्श है, यह निशान रहेंगे। बनते समय जब फर्श अभी कच्चा और गीला था, बिल्ली यह निशान बना गई। फ़र्श पर अब यदि कोई निशान पड़ता है तो स्वयम ही या पोंछ देने से मिट जाता है ।

फ़र्श पर इन अमिट निशानों को देख प्रायः अनेक बीती हुई बातें याद आजाती हैं और एक बात बहुत बचपन की, जब अभी स्कूल की शिक्षा का फन्दा गले में नहीं पड़ा था ।

पिता जी जंगलात के महकमे में अफसर थे। कभी-कभी दौरे में हम लोगों-यानि मां और बच्चों को भी साथ ले जाते ।

पहाड़ी जगह थी । सड़क से कुछ हटकर, एक बावड़ी के समीप छोलदारियां लगी थीं। सड़क कहने से मोटरों, लारियों, साइकलों

घोड़ागाड़ियों और पैदल आनेजाने वालों का जो सिलसिला ध्यान में आजाता है, वैसा कुछ न था। चढ़ाई उतराई पर कुछ चौड़ा सा रास्ता था। कभी दो-दो चार-चार पहाड़ी मर्द औरत-औरतें सिर पर और मर्द पीठ पर-छोटी सी गठरी लिये निकल जाते। कभी गले में लटके घुंघरू ठुनकाती दो-तीन खच्चरों के पीछे नारियल पीता या खच्चरों की पीठ पर गून लादने का मोटा डंडा कंधे पर लिये, कान पर हाथ रक्खे, मुख आकाश की ओर उठाये ऊँचे स्वर में गाता कोई पहाड़ी निकल जाता। उस सड़क पर इतनी ही सतर्कता थी।

कितने दिन वहाँ रहे ? बचपन की स्मृति के आधार पर कह सकना कठिन है। परन्तु सड़क और बावडी पर सुन-सुन वहाँ के गाने याद हो गये थे। स्कूल और कॉलेज में पढ़ी हिस्ट्री और कैमिस्ट्री भूल गयी पर उन गानों की कुछ पंक्तियाँ अब भी याद हैं:—

'गोरियेदा मन लगया चम्बे दिया धारा……'

(गोरी का मन चम्बे की घाटी में लग गया……)

या:—'कुंजा जाई पैयां नाड़ौण,

ठण्डे पाणी ते बांके न्हौण।

पल भर बाहि लैण ओ द्योरा !'

(उड़ते हुये क्रौंच पक्षी नादौण में जा उतरे, वहाँ ठण्डे पानी में बांके जवान नहाते हैं। आओ देवर, ऐसी जगह तो पलभर बैठेंगे ही)

बावड़ी के समीप कुछ ऊँचाई पर मोटी फटी-फटी, पपड़ी से ढँके चीड़ों के ऊँचे वृक्ष अपनी शाखाओं में डोरे जैसे पत्तों के सैकड़ों हरे चंवर डुलाते रहते थे। उन वृक्षों में से हवा गुजरने से निरंतर एक 'आह' की सी 'सू क' सुनाई देती रहती। पेड़ों के नीचे एक कब्र थी। कब्र से हटकर ढलवान पर दो झोपड़ियों में कुछ लोग रहते थे। उनके यहाँ भालू जैसे दो काले कुत्ते और कुछ मुर्गीयाँ थी। मैं और

मुझसे तीन बरस छोटी बहिन प्राय: उनसे खेलने और उन झोपड़ियों में ही रमे रहते थे।

इस सब स्मृति का केन्द्र रही है सआदत। इतने वर्ष बीत जाने, दुनिया और जीवन बदल जाने पर भी वह बात साफ़ दिखाई देती रही। माथे का आंचल अगूंठे और तर्जनी में ले, जमीन छू वह मां के सामने प्रणाम या सलाम करती थी। कुर्सी, पलंग या पीढ़े पर बैठी माँ के सामने वह जमीन पर बैठ जाती। सभ्य समाज के ढंग से सिमिट कर नहीं, पांव सामने फैले रहते और घुटने उठे हुये।

घुटनों पर रखे हाथों की उंगलियां एक दूसरे में उलझी हुई, हथेलियां सामने की ओर। उसकी बड़ी बड़ी आँखों के नीले कोयों और होठों पर एक अमिट हंसी रहती। चेहरा पकी खुमानी का रंग लिये लम्बा सा, आँखों और ओठों के बीच उठी हुई सुघड़ नाक।

बहिन सीता को वह मुन्नी पुकारती थी। उसे देख सीता दौड़कर चिपट जाती। प्राय: वह हमारी छोलदारियों में बनी रहती। मां से बातचीत करती। मां के अनेक काम-दाल बीनना, तरकारी काटना या दूसरे कामों में हाथ बटाती रहती। सबसे बड़ा काम था सीता को सम्भालना उसके पूर्ण वक्ष पर सिर रख सीता मां को भी भूल जाती।

इसके बाद बचपन में कितनी ही बेर अपनी सहेलियों और परिचितों से कहते हुये मां को सुना—'खूबसूरती तो एक दफे देखी है? आहा, गूदड़ी में लाल?

, कहावत है—'नारी न मोहे नारी के रूपा' परन्तु इस रूप पर नारी भी मोहित थी। मां प्राय: हो सुनातीं—'खूबसूरती एक बेर देखी है। कांगड़ा से नादौण जाने वाली सड़क पर रानीताल के समीप चमोला पीर की समाध है। वहाँ फकीरों के यहाँ एक बहू थी—सआदत? मोती का सा रंग, ऐसे नख सिख की रानियों के यहाँ भी क्या होंगे। देखकर भूख प्यास भूल जाय एक बार! और स्वभाव की ऐसी मीठी

कि दोनो बच्चे दिन भर उससे चिपटे रहते। बच्चों को भी क्या रूप की परख होती है भाई। किसी दूसरे के पास जाते ही न थे।

लड़कपन में अपनी पढ़ाई या खेल में लगे रहने पर भी कई दफ़े आड़ से मां को सआदत के रूप का बखान करते सुना—'मुझे तो ऐसे रूप की बहू चीथड़ों में भी मिले तो अपने लड़के के लिये आज ले आऊँ!' सुन कर मन में गुदगुदी सी उठ आती!

इसके बाद जब साहित्य और कविता में रूप और हुस्न का ज़िक्र देखा और पढ़ा, शकुन्तला, जूलियट और जुलेखा की कल्पना की तो सदा ही सआदत का मोती का सा रंग और कलम की नोक से घड़ा नख सिख कल्पना में जाग उठता। जब जब अपने विवाह के विषय में माता पिता को चर्चा करते सुना, सआदत का रूप आंखों के आगे फिर गया। माता-पिता शायद सआदत को भूल गये परन्तु मेरे लिये वह रूप नित्य अधिक यथार्थ हो रहा था। मेरे लिये सौन्दर्य का अर्थ था—सआदत और स्वयम ही अपने ऊपर हंसी भी आती। बीस वर्ष में वह क्या रह गया होगा।

युनिवर्सिटी से डाक्टर की डिग्री मिली और उसके साथ ही युनिवर्सिटी में लेक्चरार की जगह। अपनी कमाई का धन चाहे वह अधिक न था हाथ में ले पुरुषत्व की एक अनुभूति और आत्म-विश्वास से गर्दन ऊँची हो गई। घर में सदा चलते रहने वाले अपने विवाह के प्रसंग की बात स्वयम् मन में आने लगी। अपना घर, अपनी पत्नि और शायद एक सन्तान। एक उमंग सी अनुभव हुई।

वह सब तो होना ही था। उस वर्ष गर्मी की छुट्टियों में पहले अकेले जा प्रकृति और उसके सौन्दर्य को देखने के लिये घूमने जाने का निश्चय किया।

मन का संस्कार सौन्दर्य के तीर्थ की ओर खींचे लिये जा रहा था, परन्तु स्वयम् अपना तर्क ही अपने ऊपर हंस रहा था। क्या बीस

बरस बाद भी वह सौन्दर्य उस प्रकार होगा ? कौन फूल है जो मुर्झाता नहीं ? परन्तु फिर भी संस्कार खींचे लिये जा रहे थे। कांगड़ा पहुँचा। कांगड़े से नादौण जाने वाली सड़क बीस वर्ष में वास्तव में ही सड़क बन गई थी। अब उस पर मोटर लारी समय से आती जाती है। रानीताल पहुँच लारी से उतरा। पहाड़ के कंधे पर सरो के वृक्षों से घिरा छोटा सा ताल स्वप्न में देखे किसी परिचित स्थान जैसा जान पड़ा।

सौन्दर्य की प्रतीक सआदत को देखने की आशा और कल्पना न थी। केवल वह स्थान देखने की इच्छा थी जिसके सम्बन्ध से सौन्दर्य का एक आदर्श कल्पना में बन पाया था और चमोला के पीर के पुजारी फकीरों से मिलने की इच्छा थी जहाँ सौन्दर्य को अनासक्त भाव से, जीवन में पहले पहल जाना था। उस संस्कार से सौन्दर्य मेरे लिये सदा माता के स्थान पर, अपने से ऊँचा कल्पना में आराधना की वस्तु रहा।

राह पूछ कर चमोला के पीर की समाध की ओर चला। पहाड़ी की ढाल पर सांय-सांय करते चीड़ के हरे जंगल, नीचे सूखकर गिरी लाल पड़ गई चीड़ के पत्तों की सींखे, गर्ने की झाड़ियाँ, नीचे तलैटी में आम के पेड़ों का झुर्मट, सब कुछ स्वप्न के परिचित प्रदेश जैसा। सामने की ऊँचाई पर कुछ चौरस जगह में चूने से पुती चमोला की समाध घने चीड़ों के नीचे दिखाई दी। उसकी ओट फकीरों की झोपड़ियाँ। चीड़ के पेड़ स्वप्न में देखे पेड़ों से बहुत ऊँचे और बड़े जान पड़े। तलैटी में बावड़ी को पहचान गया। जिस नाले में उसका जल बह जाता था अब भी पड़ोस की जगह से अधिक हरा, बनफशे के पत्तों से छाया था।

सोचा, सब कुछ वैसा ही है परन्तु मैं अब वही नही हूँ। वे लोग भी वैसे न होंगे, सआदत न रही होगी होगी भी तो स्मृति के लिये

रखे फूल की सूखी पंखुड़ियों की भाँति। मनुष्य का सौन्दर्य ही क्यों सबसे अधिक नश्वर है? नीचे बावड़ी पर एक बूढ़ा नीले रंग का तहमत कमर में लपेटे, बगल में नेचा लिये बैठा था। समीप दो घड़े रखे थे। नेचा गुड़गुड़ाते हुये बूढ़ा दूसरे हाथ में लिये बर्तन से बावड़ी का पानी उलीच-उलीच कर घड़ा भर रहा था।

पगडण्डी से बावड़ी पर उतर गया। फ़कीर मियाँ को पीठ पीछे से पुकारना ही चाहता था कि वही जोर से पुकार उठे।

पुकार सुनकर स्तब्ध सा रह गया। कानों को विस्मय हुआ। दूसरे ही पल फकीर मियाँ ने अपनी पुकार दुहराई—'सादत ओ! ओ, सादत!' और आवाज को पहाड़ियों में दूर तक टेल देने के लिये पुकार के साथ एक कूक की टेल। पुकार के उत्तर में सग्रादत आयेगी। उन बूढ़े मियाँ के अनुकूल ही सग्रादत की कल्पना मन में होने लगी—इन्हीं के समान जर्जर। दोनों एक-एक घड़ा उठा कर लौटेंगे। परन्तु वह अभी जीवित है। वह सौन्दर्य की स्मृति! उसे देखने की आशा से श्रद्धा का भाव आ कण्ठ रुक सा गया।

क्षण भर बाद ही उत्तर में पुकार सुनाई दी—'आई नो बाप्पू ऊ ऽ ऽ ऽ।

शब्द की दिशा में आँखें उठ गईं। कब्र के टीले पर कुछ दिखाई न दिया। परन्तु उस स्वर में उठते यौवन की तीव्रता और पुलक भ्रम की वस्तु न थे। पुकार की कूक बैशाख के कोयल की मादकता लिये। मन ने पूछा—क्या यह सग्रादत की पुकार है? क्या सग्रादत मेनका, उर्वशी और वीनस की भांति चिर यौवना सौन्दर्य की देवी है?

सम्मुख कब्र के टीले की ओट से नीचे उतरती पगडण्डी पर काले कपड़े पहने एक नवयुवती सिर पर एक खाली घड़ा, औंधा रखे तेज चाल से फिसलती आती दिखाई दी। जैसे पत्थर लुड़कता चला आ रहा हो।

और प्रत्यक्ष देखा सआदत का वह रूप ! मोतिया रंग, फैली हुई आँखों के बड़े-बड़े कोयों में भोला नीलापन, ऊँची नाक, पतले लाल ओंठ ! उमंग की लहर उठा देने वाले केन्द्र की तरह। गर्व से उठा वक्षस्थल, तेज चाल से चंचल। समीप पहुँच मेरी ओर उसने कौतुहल से देखा और सम्भवतः मेरी दृष्टि की तीव्रता से तनिक सिमिट गई।

साथ में लाया खाली घड़ा उसने धीमे बावड़ी की जगत पर टिका दिया। धीमे ही दो बोल उसने बूढ़े से कहे। उसके मुख पर वह मुस्कान ! भारी घड़ा दोनो हाथों से दुलार कर सिर पर रखा। एक बेर मेरी ओर देखा और टीले की चढ़ाई पर चढ़ने लगी। शरीर में एक स्फुरन सी दौड़ गई।

जिह्वा पर आगई खुश्की निगल बूढ़े मियाँ को सलाम किया—'क्या बावड़ी में पानी नहीं आ रहा ?' बावड़ी में पानी बहुत धीमे धीमे सिम रहा था और घड़ा डूब सकने की गुञ्जाइश न थी।

माथे पर हाथ रख हजूर सम्बोधन से फकीर मियाँ ने उत्तर दिया—'गरमी के दिनों में कुछ रोज ऐसे ही तकलीफ होती है।'

परिचय जगाने के लिये मियाँ से बीस वर्ष पूर्व का जिक्र किया। आँखों की मन्द ज्योति को हथेली की ओट से सहारा दे उन्होंने मुझे सिर से पैर तक देखा—'हाँ हजूर एक हिन्दू साहब जंगलात के बड़े अफसर खेमे लगाकर दो महीने रहे थे।, बड़े गरीब परवर !'

'हमारी माँ कहती हैं—यहाँ एक सआदत बीबी हैं। माँ ने उन्हें सलाम कहा है ?' अपना साहस बढ़ाने के लिये मैंने कहा।

'हाँ हजूर इस लड़की की माँ ! अब बूढ़ी हो गई। पानी का घड़ा इस चढ़ाई पर अब हम लोगों से नहीं जाता। मांग तांग लाते हैं, इसी बेटी का सहारा है। इसे भी सआदत कहते हैं। माँ से मिलती सी थी।'

सआदत टीले पर से फिर लुढ़कती चली आ रही थी। अपने पिता से मुझे बातें करते देख उसका संकोच कम हो गया। दूसरा भरा घड़ा उठा, हुलारा दे उसने सिर पर रख लिया। उसके शरीर का वह क्षणिक तनाव! उस कमान के तनाव से एक अदृश्य बाण छूट कर मन पर आ लगा। जिह्वा पर एक खुश्की और शरीर में स्फुरण सा हुआ।

बूढ़ी सआदत को सलाम करने मियाँ के साथ टीले के ऊपर झोंपड़ी में गया। परिचय पा बुढ़िया ने सिर पर हाथ फेरा। माँ की बाबत बहुत कुछ पूछा। मेरे बचपन की कुछ स्मृतियाँ सुनाईं। सआदत चेहरे पर सहज संकोच और फैल हुई आँखों में कौतूहल लिये मेरी ओर देख रही थी। उसने मेरे सत्कार के लिये दोग्वले और आक्खे (पहाड़ी अंजीर और स्ट्राबरी) पेश किये और एक कटोरे में भैंस का दूध, बहुत सी मलाई छोड़ कर।

वह सामने आ बैठी। वैसे ही, जैसे उसकी माँ किसी समय मेरी माँ के सामने बैठा करती थी। शिकारी से निष्शंक हिरनी की तरह। आँखे उस पर टिक न पाती थीं। शायद, जैसे देखना चाहता था वैसे देखने का बल न था। और कितनी ही बातें जो माँ अपनी भावी बहू के सम्बन्ध में कहती थी, याद आ रही थीं और असामर्थ्य का एक भाव मन को शिथिल किये दे रहा था।

दोपहर पश्चात् की मोटर से कांगड़ा लौट जाना जरूरी था इस लिये समय रहते ही चला। सिर झुकाये सोचता जा रहा था। जैसे चोट लगने के कुछ समय बाद उसका दर्द उठता है। सौन्दर्य की कल्पना में प्रतिष्ठा और गरिमा का जो भाव मस्तिष्क में लेकर आया था वह हृदय में उतर उसे अस्थिर कर रहा था। सौन्दर्य पूजा की वस्तु न रह कर पीड़ा का कारण बन रहा था। सौन्दर्य की नश्वरता

के प्रति सहानुभूति उसके अस्तित्व की अनुभूति से एक विकलता में बदलती जा रही थी।

मन का उद्वेग दूर हो जाने पर भी सआदत के सौन्दर्य को भूला नहीं हूँ। और खयाल है कि नारी का सौन्दर्य उसके व्यक्तित्व की भाँति नश्वर नहीं। वह मनुष्य की परम्परा के समान ही शाश्वत है। जैसे फूल के बीज से फूल पैदा होता ही रहता है.........।

१३

साग—

जिला जेल की फाँसी की कोठड़ियों में विशेशरप्रसाद और रहमान खाँ बन्द थे। जैसे लोहे के पिंजरों में बन्द सरकस के शेर और चीते को लोग विस्मय और कौतुहल से देखते हैं, वैसे ही बड़े-बड़े अंग्रेज़ सिविल सर्जन साहब, बगावत के पश्चात् जिले की व्यवस्था सुधारने के लिये आये अंग्रेज कलक्टर साहब, फाँसी की कोठड़ियों के जंगले के सामने खड़े हो, इन कैदियों को देखते थे। परन्तु इन बड़े अफ़सरों के मुख पर सरकस देखनेवालों का कौतुहल नहीं, घृणा थी।

जब यह दोनों कैदी जेल में आये इनके शरीर पर गोलियों के घाव थे। अंग्रेज़ सिविल सर्जन साहब ने कर्तव्य का पालन करने के लिये चीर-फाड़ कर विशेशरप्रसाद के घुटने से और रहमानखाँ की कमर से गोली निकाली और उनकी दवा दारू की। इस कर्तव्य का पालन करते समय साहब का चेहरा घृणा से छुहारे की भाँति सिकुड़ जाता।

अपने चारों ओर अदब से सहम कर खड़े हुये अपने हिन्दुस्तानी मुसाहिबों जेलर, जेल के डाक्टर, कम्पाउण्डर, जेल के बाबू लोगों और वार्डरों को सुना कर साहब टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में कहना न भूलते— 'इन बदमाश लोगों ने साहब लोग को बंगले में जलाकर मारा है।'

गोलियों के घाव ठीक हो जाने से पहले ही दोनों कैदियों के पांवों में साहब के हुकुम से बेड़ियां डाल दी गईं। उन पर तुरंत मुकद्दमा चलाकर सज़ा देने के लिये सेशनजज स्वयम जेल में तशरीफ़ लाये। शीघ्र ही पर्याप्त गवाही और सुबूत पेश हो जाने से उन्हें सेशनजज साहब ने आग लगाने और हत्या के अपराध में फाँसी का हूकुम सुना दिया।

सरकार के कायदे से फाँसी की सज़ा पाये प्रत्येक व्यक्ति के लिये हाई-कोर्ट में अपील की जाती है। इन दोनों अभियुक्तों की ओर से भी अपील की गई। हाई-कोर्ट से फाँसी की सजा रद्द हो जाने या सज़ा पर हाई कोर्ट की मंजूरी की मोहर लग जाने की प्रतीक्षा में उन्हें लोहे की सींखचांदार कोठरियों में बन्द रखा गया।

अंग्रेज़ सिविल सर्जन साहब जब भी इन कोठड़ियों के सामने आते, घृणा की सिकुड़न उनके चेहरे पर आ जाती। अधिक कुछ कहने का अवसर न होने पर—'मर्डरर (हत्यारे)'! कह कर वह एक ओर थूक देते।

साहब का रुख देख ऐसे भयंकर कैदियों के ऊपर हिन्दुस्तानी जेलर, दूसरे अफ़सर और वार्डर सब विशेष सख्ती रखते थे। कभी कोई दूसरा कैदी उनकी कोठड़ी की छाया के समीप भी न जा पाता। उनके सामने आते ही सब अफ़सरों और वार्डरों के चेहरे पत्थर की तरह भाव शून्य और कठोर हो जाते।

विशेशरप्रसाद और रहमान खाँ अपने अपराध का बोझ जानते थे। क्षमा की उन्हें कोई आशा न थी। परन्तु निराशामय विस्मय था—

इन तमाम हिन्दुस्तानियों को उनसे द्वेष और भय क्यों है ? जिस अंग्रेज़ सरकार से वे लड़ने गये थे, उस सरकार का अंग्रेज़ तो कभी-कभी ही दिखाई देता है। वह सरकार तो स्वयम उन जैसों के ही हाथ से चल रही है। देश को आज़ाद किया जाय तो किससे ?

× × ×

अंग्रेज़ों को जलाकर उनका खून करने वाले इन हत्यारों के प्रति साहब लोगों का क्रोध और घृणा के कारण प्रतिहिंसा का अन्त न था। हाई-कोर्ट से दोनों को फाँसी लगाने की स्वीकृति आने पर इन्हें फाँसी की रस्सी पर छटपटाते देखने के लिये जेल के बड़े साहब और बगावत से जिले की बिगड़ी अवस्था सुधारने के लिये आये दूसरे अंग्रेज़ अफ़सर तड़के ही जेल पहुँचे।

मृत्यु सामने थी। मृत्यु की ओर उन्हें शत्रु की प्रतिहिंसा ले जा रही थी। शरीर देकर भी उस प्रतिहिंसा के सम्मुख स्वतंत्रता की भावना को जीवित रखने के लिये, परास्त न होने के लिये, उन्होंने फाँसी के तख़्ते पर पहुँच कर भी पुकार लगाई—इंकलाब ज़िन्दाबाद ! भारत माता की जय !

और उन्होंने अपने चारों ओर खड़े हिन्दुस्तानियों की ओर देखा—वे काठ की मूर्तियों की भाँति भावशून्य और स्थिर थे।

मृत्यु के दुख में भी अपनों में अपनेपन का कोई संकेत उन्हें न मिला। केवल शत्रु के चेहरे पर दांत पीस लेने का संकेत था।

× × ×

विशेशर और रहमान के सम्बन्धी रोते हुये अपने आदमियों की लाशें पाने के लिये जेल के फाटक पर खड़े थे। कलक्टर साहब ने वह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। बागियों की लाश का प्रदर्शन शहर में होने से शान्ति भंग होने का भय था।

सिविल सर्जन साहब के हुक्म से हिन्दुस्तानी जेलर हाज़िर हुये। साहब ने हुक्म दिया—'दोनों बाग़ियों की लाशें जेल के भीतर ही दफ़नाई जायँ।' दाँत पीस कर साहब ने कहा—'और इनकी लाश पर मर्सा का साग बोया जाय। साग तैयार होने पर सब साहब लोग के यहाँ भेजा जाय!'

× × ×

मर्सा का साग बहुत जल्दी तैयार हो जाता है। गहराई तक भुरभुरी कबरों की ज़मीन पा वह और भी जल्दी खूब ऊँचा उठ आया। एक दिन साग को खूब हरा भरा देख सिविल सर्जन साहब ने साग साहब लोगों को भेजे जाने की फ़रमाइश की।

जेल भर में खबर फैल गई—बाग़ियों की कब्रों का साग आज साहब लोगों के यहाँ गया है। रात पड़ने पर जेल बंद हुआ। बारकों में बंद प्रत्येक कैदी के मन में साग की बात थी। प्रत्येक कैदी कल्पना कर रहा था—हिन्दुस्तानी को अंग्रेज़ खा रहा है। परन्तु सभी कैदियों का मुँह बन्द था:—ऐसी बात कहने की रिपोर्ट अगर साहब के सामने हो जाय?

जेल के प्रत्येक अफसर के मन में साग की बात थी। प्रत्येक अफ़सर और वार्डर मन में कल्पना कर रहा था:—कि अंग्रेज़ हिन्दुस्तानी को खा रहा है। परन्तु जेलर साहब दूधिया मसहरी में, पंखे के नीचे, दिल में उबाल लिये तकिये पर मुँह दबाये पड़े थे। डाक्टर और कम्पौण्डर साहब चादर में सिर छिपाये यही सोच रहे थे। बड़े वार्डर मैले फटे कम्बल पर आँख मूँदे, और केवल बीस रुपये माहवारपानेवाले नये सिपाही खुरांटी खटिया पर औंधा मुँह किये यही सोच रहे थे परन्तु शब्द किसी के होठों पर न था।

× × ×

जिले में अमन हो जाने की खुशी में साहब लोगों के क्लब में

उस दिन डिनर था। हिन्दुस्तानी बैरे स्वच्छ तश्तरियों में वह हिन्दुस्तानी बाग़ियों की कब्र पर उगा साग साहब लोगों के सामने पेश कर रहे थे।

उन्होंने भी साग की कहानी सुनी थी। इन के चेहरे आतंक से सहमे हुये थे, पाँव में कमज़ोरी अनुभव हो रही थी परन्तु हाथ भय से साहब की सेवा में मैशीन की भाँति अपना काम करते जा रहे थे।

बात सब के दिल में थी परन्तु किसी के होठों पर न आ पाती थी। साहब के भय से और आपस में एक दूसरे के भय से।

आह सब के दिल में थी। परन्तु आहें सब की अलग-अलग बिखरी हुईं। निर्जीव श्वासों की भाँति उनके हृदय से निकल हवा में समाप्त हो रही थीं। एक साथ मिलकर वे आंधी की शक्ति न पा सकती थीं, क्योंकि उन्हें परस्पर भय था। भय :—अपनों से भय, शत्रु से भय, सब ओर भय……!

१४.

पहाड़ का छल—

अपनी कम्पनी के साबुनों के नमूनों का सूटकेस ले पठानकोट से लारी पर डलहौज़ी पहुँचा। गिनी-चुनी, बिखरी हुई बेरौनक सी दुकानें देख कारोबार के लिये विशेष उत्साह न हुआ। कुली के सिर पर सूटकेस और चिलमची उठवाये, चकले पत्थरों से मढ़े सकरे बाज़ारों की चढ़ाई-उतराई पर कमर को दोनों हाथों से सहारा दिये, दूकान-दूकान फिरते दोपहर हो गई।

जून के महीने में भी उस कठिन परिश्रम से पसीना न आया। पहाड़ी हवा क्या थी, नई दुलहिन के मेंहदीरचे और सौंधाते हाथों से भी उसका स्पर्श अधिक सुखद था। सड़क किनारे देवदार के भारी वृत्त हरे रंग के विशाल मन्दिरों की भांति अपनी चोटी दृष्टि से इतनी ऊँची उठाये थे कि उन्हें देखने के यत्न में टोपी सिर से गिर जाय! हवा की हिलोर से उनकी टहनियां ऊपर नीचे झूमती थीं जैसे सुलाने के लिये थपकियाँ दे रही हों। और! उत्तर-पूर्व में पहाड़ियों की चोटी पर! उत्तर

से पूर्व तक फैली धूप में खिलखिलाती बरफ़ !······ कभी ख़याल आता, चाँदी की दीवार बनी है और मन में उमंग आने से कल्पना होती—स्वर्ग की अप्सराओं ने अपनी उजली साड़ियाँ धो कर सूखने के लिये धूप में फैला दी हैं।

कम्पनी से मिले प्रोग्राम में चम्बा का दौरा भी था। देश से पहाड़ आने वाले व्यापारियों और एजेण्टों की अन्तिम सीमा चम्बा ही है। इसके आगे न तो सड़कें ही हैं और न कोई शहर-बाज़ार।

डलहौज़ी से सड़क नीचे ही नीचे उतरती गई। टट्टू पर सवार होकर चलने से शरीर झकझोर हो जाता है और पैदल चलने से पाँव खून भर कर, फटकी हुई बोरी की तरह, भारी पड़ जाते हैं।

चम्बा छोटी-सी पहाड़ी रियासत है। चम्बा शहर पहाड़ की तलहटी में चट्टानों से सिर मारती, फेन उछालती रावी नदी के किनारे छोटे से मैदान में बसा है। नदी नदी न मालूम होकर बहते हुये झरने जैसी जान पड़ती है। चारों ओर उठे बीहड़ पहाड़ों से घिरी घाटी में हरियाली खूब है, परन्तु डलहौज़ी की गरिमा नहीं है। ऐसा नहीं जान पड़ता कि संसार से बहुत ऊँचे पहुँच गये हों।

देश के मैदानों से बड़ी-बड़ी सेनाओं का यहाँ चढ़ आना आसान नहीं। शायद इसीलिये किसी राजा ने अपनी स्वतंत्र रियासत बना निर्भय रहने के लिये यह प्रदेश चुना होगा।

चम्बा में सराय है, परन्तु वह ठिगने पहाड़ी लद्दू बैलों, खच्चरों और बकरियों से भरी थी। इसलिये गुरुद्वारे (सिक्ख मन्दिर) में ही शरण ली।

भोजन कर सफ़र की थकान मिटाने के लिये लेट गया और नींद आ गई। जब सोकर उठा, चम्बा के आधे मैदान पर पश्चिम ओर की पर्वत-श्रेणी की छाया छा चुकी थी। मैदान के किनारे पहाड़ की जड़ के साथ साथ कुछ दुकानें हैं। और उनके पीछे दो घरों की चौड़ाई

तक बस्ती। ये ही बाज़ार है जिसे पहाड़ के लोग गर्व से 'नग्गर' कहते हैं।

सोचा—अभी संध्या में दूकानों का चक्कर हो जाय और कल सुबह ही डलहौज़ी लौट चलें। सुबह की ठंडक में चढ़ाई आसानी से हो सकेगी।

पाँच-छः दूकानें देख लेने में समय लगता ही कितना है? पहाड़ों के पीछे छिप जाने वाले सूर्य का प्रकाश आकाश में पहले से मौजूद शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की चाँदनी में बदलने लगा। नग्गर की दुकानें बढ़ाई जाने लगीं। मेरा काम भी समाप्त हो चुका था।

अन्त में जिस पंसारी की दूकान पर गया, वहाँ चम्बा मिडिल स्कूल के एक मास्टर साहब से भेंट हुई। कम्पनी का एक कैलेंडर उन्हें भेंट करने से मित्रता भी हो गई।

दुकान से मैदान की ओर कदम रखते हुए मास्टर साहब से चम्बे में देखने लायक चीजों के बारे में प्रश्न किया। उत्साह से उन्होंने उत्तर दिया—'हाँ, हाँ, महाराज के महल हैं, महारज का क्लब है, लाइब्रेरी है, अस्पताल है, डाकखाना है······।

किसी के रहने का निजी मकान कैसा भी हो, झोंपड़ा हो या महल, उसे देखने जाना कुछ जंचा नहीं। मैदान में बसी चम्बा की शेष आबादी से ऊँचाई पर मास्टर साहब ने उंगली से यह सब स्थान दिखा दिये। कुछ दर्शनीयता उनमें जान न पड़ी।

समीप ही रेलगाड़ी गुज़रने का सा शब्द निरन्तर सुनाई दे रहा था। पूछने पर मास्टर साहब ने हँस कर बताया—'यह तो नदी की आवाज़ है।'

नदी की ओर उतर गये। नदी बड़े-बड़े पत्थरों से टकराती बही चली जा रही थी। किनारे भीमकाय चट्टानें, खड़े हाथी के आकार का पड़ी हैं। उन्हीं पर हम लोग जा बैठे। चाँद ऊपर उठ आया था,

और सम्पूर्ण घाटी पर रुपहला धुंधलापन छा गया। रावी के फेनिल चंचल जल में चन्द्रमा के असंख्य प्रतिबिम्बों से ऐसा जान पड़ता था मानो दीप-शिखाओं का अथवा शीतल आग का प्रवाह बहा चला जा रहा हो।

बाईं ओर एक छोटी पहाड़ी की चोटी पर एक बुर्ज सा धुंधली चाँदनी में दिखाई दिया। मास्टर साहब से पूछा—'वह भी चट्टान है क्या? कैसा दिखाई देता है, जैसे बनाया गया हो!'

'नहीं, उसे गुजरी का बुर्ज कहते हैं।'—मास्टर साहब ने कहा, और मेरा ध्यान दूसरी चोटी पर एक श्वेत विशाल चट्टान और मन्दिर की ओर खींचते हुए बोले—'और यह सतियों का टियाला (चौतरा) है। पिछले समय में महल की रानियां राजा की मृत्यु के बाद वहीं सती होती थीं। वहाँ एक छोटा-सा मन्दिर है। अब भी राज की ओर से पुजारी रहता है।'

मेरा ध्यान फिर बुर्ज की ओर गया। पूछा—'गुजरी का बुर्ज कैसा?'

'महाराज के पड़दादा के समय महल की एक रानी बदचलन हो गई थी। रानी क्या, किस्सा यों है कि महाराज पांगी से लौट रहे थे। उन्होंने एक जवान, बेहद खूबसूरत गुजरी को देखा। उसकी खूबसूरती का क्या कहना? महाराज के महल में बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं और सरदारों के घर से बासठ रानियां थीं। लेकिन उसके आगे सब फीकी पड़ गईं। कोई उसकी परछाईं को न पहुँच पाती।

'चाँदनी में फूटी चम्पा की कली-सी, बिलकुल अप्सरा। ऐन चढ़ती उम्र, सोलह-सत्रह बरस की। किस्सा है कि महाराज ने उसे देखा और महल में बुलवा लिया। उसके आगे महाराज सब कुछ भूल गए। एक सौ भैंसों के दूध का झाग मल कर वह सौ मन फूलों में बसाये पानी से नहाती थी। लेकिन कुजात कभी छिप नहीं सकता।

'महाराज बूढ़े हो गये। पूजा-पाठ में दिन बिताने लगे। एक दिन महाराज अचानक रात में गुजरी के महल में जा पहुँचे और उसे महल के एक जवान नौकर के साथ पाया। गुजरी ने उसे अपना भाई कहकर महल में नौकर रखवा लिया था।

'महारज ने उस नौकर को उसी समय क़त्ल करवा दिया। राज-मजदूर बुलवाये गये, और गुजरी को उसी जगह'—मास्टर ने बुर्जी की ओर संकेत किया—'खड़ा करवा, मशालों की रोशनी में उसके चारों ओर चूने और पत्थर से बुर्जी चुनवा दी गई। कहते हैं, ऊपर एक छेद है; उसी से ज्वार की दो रोटियाँ और घड़िया भर पानी रस्सी में लटका कर पहुँचा दिया जाता था। मर जाने के बाद भी उसे निकाला नहीं गया।'

'लेकिन यह कैसे मालूम होता था कि वह जिन्दा है या मर गई?'—मैंने प्रश्न किया।

'मालूम क्या होता? ऐसा ही सुनते हैं भाई। और उसका मरना जीना क्या? मर तो गई ही समझो!'—घर लौटने की आवश्यकता बता मास्टर साहब उठ गये।

मुझे हिलने न देख मास्टर साहब ने कहा—'देर तक न बैठियेगा, यहां छूत बहुत होता है।'

चौंक कर पूछा—'क्या डाकू? लूट-मार—?'

सिर हिला कर उन्होंने उत्तर दिया—'नहीं, नहीं, ऐसा तो यहां कभी सुना भी नहीं। वह देश की बातें हैं। बात यह है कि इन्हीं चट्टानों पर शहर के मुर्दे जलाये जाते हैं। प्रेत लोग यहां रात में बड़े-बड़े नाटक करते हैं। परन्तु शायद आप, शहरों के लोग तो इन बातों में विश्वास नहीं करते?'

'ओह!'—कह कर मैं बैठा रहा और मास्टर साहब चल दिये।

मुझे कुछ जल्दी न थी। गुरुद्वारे की सूनी अंधेरी कोठरी की अपेक्षा

शीतलता की सिहरन पैदा करती, फर-फराती पहाड़ी हवा और सामने चांदनी में उद्दाम फेनिल प्रवाह कहीं अधिक सुहावने थे।

बाईं ओर छोटी पहाड़ी की चोटी पर बनी, कोहरे में छिपती जाती बुर्जी की ओर दृष्टि किये, सौ भैंसों के दूध का झाग मल, सौ मन फूलों में बसाये जल से स्नान करने वाली सुन्दरी की बात सोच रहा था। कितना कोमल और कितना विमल रहा होगा उसका रूप ? कितना सुख राजा ने उसके प्रेम में पाया होगा ? और कितनी दारुण व्यथा उस बुर्ज में मुंद जाने के बाद गुजरी ने पायी होगी ?......क्या वह रोई-चीखी होगी ?......कितनी व्यथा से उसके प्राण निकले होंगे ? उस पीडा का कोई रूप और सीमा निश्चित न कर पा रहा था।

दृष्टि सतियों के टियाले की ओर गई और आग में जलती रानियों की पीड़ा का ध्यान आया और सोचा—क्या उस पीड़ा के कारण वह चीख न उठती होंगी ?......क्या वह छटपटाती न होंगी ? क्या बासठ, बयासी और एक सौ सभी रानियां राजा के प्रेम में मर जाना ही चाहती थीं ?......क्या सबकी यही इच्छा थी ? पैंतालिस-पचास बरस से लेकर सोलह-अठारह बरस की, महल में केवल बरस भर पहले आई, रानी तक ?

सतियों के टियाले पर सहसा महाराज का शव राजसी ठाठ से सजी विस्तृत अर्थी पर दिखाई दिया।

देखा—महल में कोहराम मच गया है। सती-यज्ञ की तैयारियां हो रही हैं। सुहाग के चिन्हों और रत्न-आभूषणों से रानियों का पूर्ण शृङ्गार हो रहा है। वे सिर धुन-धुन कर, केश नोंच-नोंच कर विलाप कर रही हैं। अपने आभूषण उतार-उतार फेंक रही हैं। वह शृंगार उनकी मृत्यु की तैयारी है, परन्तु महाराजा बने युवराज और मंत्रियों की आज्ञा है कि सती यज्ञ के लिये सब राजमाताओं का शृंगार हो।

देखा—पटरानी राजमाता चेहरे की झुर्रियों में आँसू भरे, दाँत टूटे

हुये जबड़े फैलाये, केश गूंथती दासियों के हाथ से अपने पके केश बार-बार खींच चीत्कार कर रही हैं—'हाय मेरे पेट से जनमा बेटा मेरा काल हो रहा है ! हाय मैंने तो बीस बरस से उसके पिता को देखा नहीं ! हाय जिन सौतों के महलों में वह रहता था, उन्हें ले जाओ। मैं तो कभी की राँड हो चुकी थी।

पचीस-तीस बरस की दो जवान रानियाँ आँखों में खून भरे, क्रोध से शृंगार करने वाली दासियों को मारने और नोचने के लिये झपट रही हैं। उनके हाथ-पाँव बाँध कर शृंगार की व्यवस्था की जा रही है। एक अति वृद्धा दासी ने दूसरी दासियों को आज्ञा दी—'प्यास लगने पर रानियों को जल के स्थान पर तीव्र मद पीने को दें।'

कुछ रानियाँ गुमसुम हो घुटनों पर सिर रखे भय से काँप रही हैं और एक अठारह वर्ष की अत्यन्त सुन्दर रानी बेबस हो फफक फफक कर रो रही हैं।

कुछ समय बाद देखा—वे कभी चीत्कार करती हैं और कभी हँसती हैं। उन्हें और मद पिलाया जा रहा है। सबको मद पिलाया जा रहा है। उस उन्मत्त अवस्था में सबका शृंगार हो गया।

देखा—महल के आंगन में डोलियाँ सज रही हैं। मत्त रानियों को लेकर डोलियाँ चलीं। डोलियों के साथ ढोल, नगाड़े, तासे, तुरही और दूसरे बाजे बजते जा रहे हैं। मैं सोच रहा हूँ, क्या यह बाजे रानियों के भय के चीत्कार और विलाप की पुकारें दबा देने के लिये हैं?

देखा—सतियों के टियाले पर कई कदम लम्बी एक चिता चुनी गई है। रानियों की डोलियाँ चिता के चारों ओर रखी गई हैं। तलवारें और भाले लिये सशस्त्र योद्धा चिता को घेरे खड़े हैं। नगाड़े और बाजे जोरों से बज रहे हैं। रानियों को उठा कर मध्य में रखी महाराज की अर्थी के चारों ओर बैठाया जा रहा है। उनमें से कोई प्रसन्नता से

खिलखिला रही है, कोई उदास और चुप है, कोई अपने स्वर्गीय महाराज की स्मृति में आंसू बहा रही है।

देखा—चिता में आग दे दी गई। अर्थी के चारों ओर बैठी रानियां विचलित हुईं। योद्धा सतर्क हो अपने शस्त्र लिये चिता की ओर लपके! एक चीत्कार, नगाड़ों और बाजों की आवाज़ें!.........आकाश-चूमती लपटें!

एक सिहरन से दृष्टि उस ओर से हटा गुजरी की बुर्जी की ओर कर ली। हृदय धड़क रहा था। धुँधली चांदनी में बुर्जी कांपती हुई सी दिखाई दी। चांदनी रात का कोहरा उसके चारों ओर लिपटने लगा और वह एक किले या राजमहल की दीवार की भांति विशाल बन गई। दीवार के नीचे भाले तलवार लिये सैनिक पहरा दे रहे थे। दिवार में एक खिड़की खुली। एक सुन्दरी का मुख, दूध के झाग के सामन शुभ्र और फूल की कोमलता और लुनाई लिये। दिखाई दिया—खिड़की से एक रस्सी लटकी गई। रस्सी के सहारे वह सुन्दरी उतर आई। महल के एक युवक नौकर के गले में बाँह डाल सुन्दरी ने कहा—'प्यारे!'

युवक भय से कांप उठा—'महारानी!'—उसने आंखें झुका लीं।

'रानी नहीं,'—सुन्दरी ने उत्तर दिया—'मैं महाराज कि कैदिन हूं। पेड़ की डाल से मुझे तोड़, चख कर उन्होंने एक ओर रख दिया। परन्तु मैं भी कुछ हूँ। मेरी भी जरूरतें हैं। प्यारे, तुम्हारे लिये सब ख़तरे झेलती हूँ।' एक-दूसरे के श्वास में श्वास लेते वे दोनों कांप रहे थे।

गुजरी रानी ने कहा—'प्यारे, जान के मोल यह प्यार है। इसमें दगा नहीं है। रानी का प्यार नहीं, गुजरी का प्यार है।'

देखा—सहसा लोग दौड़ पड़े। मशालें और हथियारों की चमक। गुजरी रानी के देखते-देखते उसके प्रेमी का सिर धड़ से अलग हो गया।

गुजरी का दूध के झाग के समान शुभ्र और चम्पा का लावण्य लिये चेहरा सहसा संगमरमर की मूर्ति की तरह निश्चल हो गया। एक डोली में उसे डाल कर लोग ले चले। सतियों की टियाले की ओर नहीं, दूसरी चोटी पर।

मर कर भी वह गिर नहीं पड़ी। खड़ी रही, सीधी खड़ी रही। उसके चारों ओर बड़े बड़े पत्थर के टुकड़े चूने से जोड़ कर बुर्जी चुन दी गई। बुर्जी के ऊपर छोड़ दिये गये छेद से एक तीखी चीख निकल पड़ी, जैसे बिलकुल समीप ही रेल के इंजन के चीख पड़ने से कान फट से जाते हैं। शरीर सिहर उठा। परन्तु रेल तो चम्बा से एक सौ मील से अधिक दूर है। सोचा, क्या हो रहा है।

दृष्टि सतियों के टियाले की ओर गई। प्रज्वलित विराट चिता में रानियां बिलख कर, सिर पीटती, चीत्कार करती दिखाई दीं। बुर्जी के छेद से इंजन की चीख से निकलता भाप दिखाई दिया, और कान फटे जा रहे थे।

सतियों के टियाले और गुजरी की बुर्जी के बीच महाराज दिखाई दिये, अनेक रानियां से घिरे। कुछ की डोलियाँ सती के टियाले की ओर चल दीं और एक डोली बुर्जी की ओर—

अपना सिर हिला कर सोचा—क्या है यह सब ?······मास्टर ने कहा था—'यहाँ छल बहुत होता है।'

शरीर में कमज़ोरी मालूम दी। नदी-पार सियार ऊँचे स्वर में 'हुआं-हुआं' कर रहे थे। शीत की सिहरन अनुभव हुई। परन्तु माथे पर पसीना आ रहा था।

मैं उठा और गुरुद्वारे की अंधेरी कोठड़ी में शरण पाने के लिये लम्बे कदम उठाता चल दिया।

१५

घोड़ी की हाय—

ज़िले में नये सेशन-जज के आने से शहर के वकीलों में उत्सुकता और आशंका मिली सनसनी सी फैल रही थी। वकालत के पेशे में सफलता के लिये कानून का गहरा ज्ञान तो आवश्यक है ही परन्तु उस ज्ञान का उचित उपयोग कर सकने के लिये जज के स्वभाव और प्रकृति का परिचय भी कम आवश्यक नहीं। यदि मवक्किलों के मन में भ्रम बैठजाय कि जज साहब अमुक वकील को पसन्द नहीं करते तो बार-एसोसियेशन की पूरी लायब्रेरी रट लेने पर भी वकील साहब की वकालत चमक नहीं सकती। इसलिये के० एस० रंधीरा, आई० सी० एस० के शहर में आने पर वकील लोग अनेक उपायों से उनके पिछले इतिहास, स्वभाव और प्रकृति के परिचय की खोज में थे।

रंधीरा साहब अपने मौन और एकान्त प्रियता के कारण किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण परन्तु दुर्बोध शिला लेख की भांति निश्चल और जटिल बने थे। वकील लोगों ने सौजन्य के आवेश में जज साहब के अर्दलियों को पान खिलाये, अपने हाथों सिगरेट पेश किये परन्तु कुछ

जान नहीं पाये। अदालत के समय के पश्चात भी रंधीरा साहब अपने स्टैनो को रोके बैठे रहते। बंगले पर लौटते समय फैसले लिखने के लिये फाईलें साथ ले जाते। सिगार पीते हुये आते। कोर्ट के दरवाज़े पर सिगार मुखसे हट जाता। नाश्ते की छुट्टी के समय फिर सिगार जलता और फिर अदालत समाप्त होने पर वही सिगार, और कुछ नहीं। न क्लब, न कहीं सोसायटी में आना-जाना। उन्हें कोई कुछ जान पाता तो कैसे ? और परिचय करने का यत्न करता तो कहाँ ?

मिसेज़ रंधीरा इतनी आत्मतुष्ट और एकांत प्रिय न थीं। कॉलिज में पायी शिक्षा के उपयोग के लिये उन्हें गृहस्थ की सीमा के भीतर पर्याप्त अवसर भी न था। एक सामाजिक प्राणी की हैसियत से समाज में अपने स्थान और समाज के प्रति कर्तव्य दोनों का ही उन्हें खयाल था। गृहस्थ के कर्तव्य के प्रति भी उपेक्षा न थी। दो बच्चे थे पाली और रंजू, वे आया के सुपुर्द थे। रसोई खानसामा के हाथ में और सफाई बैरा के। यह लोग गृहस्थ की देख रेख करते थे और मिसेज़ रंधीरा इन लोगों के काम की।

अक्टूबर के आरम्भ में ही रंधीरा साहब ने चार्ज लिया था। कुछ दिन बाद ही शहर में 'जच्चा-बच्चा की हिफ़ाज़त करनेवाली कमेटी' (मेटर्निटी वेलफेयर) की ओर से एक बच्चों का मेला या प्रदर्शिनी हुई। जनवरी में कुत्तों की प्रदर्शिनी हुई मार्च में फूलों की। मिसेज़ रंधीरा ने समाज-हित के इन सभी कामों में सहयोग दिया परन्तु इन कामों के कर्ता-धर्ता और प्रबंधक पहले से मौजूद थे। 'जच्चा-बच्चा की हिफ़ाज़त कमेटी' की प्रधान डिप्टीकमिश्नर साहब की मेम साहबा थीं। कुत्तों की प्रदर्शनी का काम कई वर्ष से असिस्टेंट चीफ़ सेक्रेटरी की मेम साहबा के हाथ में था और फूलों की प्रदर्शनी लेडी वाजपेयी करवा रही थीं। पर्दा-बाज़ार भी वर्ष में दो बेर लगता था और उसकी कमेटी की प्रधान लेडी करामतुल्ला थीं।

जान नहीं पाये। अदालत के समय के पश्चात भी रंधीरा साहब अपने स्टैनो को रोके बैठे रहते। बंगले पर लौटते समय फैसले लिखने के लिये फाईलें साथ ले जाते। सिगार पीते हुये आते। कोर्ट के दरवाज़े पर सिगार मुखसे हट जाता। नाश्ते की छुट्टी के समय फिर सिगार जलता और फिर अदालत समाप्त होने पर वही सिगार, और कुछ नहीं। न क्लब, न कहीं सोसायटी में आना-जाना। उन्हें कोई कुछ जान पाता तो कैसे ? और परिचय करने का यत्न करता तो कहाँ ?

मिसेज़ रंधीरा इतनी आत्मतुष्ट और एकांत प्रिय न थीं। कॉलिज में पायी शिक्षा के उपयोग के लिये उन्हें गृहस्थ की सीमा के भीतर पर्याप्त अवसर भी न था। एक सामाजिक प्राणी की हैसियत से समाज में अपने स्थान और समाज के प्रति कर्तव्य दोनों का ही उन्हें खयाल था। गृहस्थ के कर्तव्य के प्रति भी उपेक्षा न थी। दो बच्चे थे पाली और रंजू, वे आया के सुपुर्द थे। रसोई खानसामा के हाथ में और सफाई बैरा के। यह लोग गृहस्थ की देख रेख करते थे और मिसेज़ रंधीरा इन लोगों के काम की।

अक्टूबर के आरम्भ में ही रंधीरा साहब ने चार्ज लिया था। कुछ दिन बाद ही शहर में 'जच्चा-बच्चा की हिफ़ाज़त करनेवाली कमेटी' (मेटर्निटी वेलफेयर) की ओर से एक बच्चों का मेला या प्रदर्शिनी हुई। जनवरी में कुत्तों की प्रदर्शिनी हुई मार्च में फूलों की। मिसेज़ रंधीरा ने समाज-हित के इन सभी कामों में सहयोग दिया परन्तु इन कामों के कर्ता-धर्ता और प्रबंधक पहले से मौजूद थे। 'जच्चा-बच्चा की हिफ़ाज़त कमेटी' की प्रधान डिप्टीकमिश्नर साहब की मेम साहबा थीं। कुत्तों की प्रदर्शनी का काम कई वर्ष से असिस्टेंट चीफ़ सेक्रेटरी की मेम साहबा के हाथ में था और फूलों की प्रदर्शनी लेडी वाजपेयी करवा रही थीं। पर्दा-बाज़ार भी वर्ष में दो बेर लगता था और उसकी कमेटी की प्रधान लेडी करामतुल्ला थीं।

जहाँ चाह वहाँ राह, या लगन होने पर अवसर भी आही जाता है। मिसेज़ रंधीरा ने भी अपने सेवा-भाव के लिये मार्ग ढूँड निकला। उन्होंने, एस० पी० सी० ए०, 'सोसायटी फ़ार दी प्रवेंशन आफ़ क्रुएल्टी टू एनीमल्स' (पशु निर्दयता निवारक समिति) का काम सम्भाल लिया। काम जितना कठिन था उतना ही उसका क्षेत्र भी विस्तृत था और इस कर्तव्य को पूरा कर सकने के लिये अधिकार और सरकार की सहायता की भी आवश्यकता थी।

मिसेज़ रंधीरा ने डिप्टी-कमिश्नर से मिल कर करुण शब्दों में ऐसे महत्व पूर्ण काम के प्रति सरकार की सहायता के लिये प्रार्थना की। पुलिस के डिप्टी-सुपरिण्टेण्डेण्ट उनके बंगले पर उनसे मिलने आये। सप्ताह नहीं बीता था कि शहर के चौराहों पर सफ़ेद कपड़े पर लाल अक्षरों में S. P. C. A. का पट्टा बांधे पुलिस के सिपाही दिखाई देने लगे। ज़िला अदालत के वकीलों को इस शुभ कार्य के प्रति प्रेरणा और उत्साह हुआ। संध्या समय फ़ुर्सत होने पर अनेक वकील भी काली अचकन या कोट की आस्तीन पर S. P. C. A. का पट्टा बाँधे, पुलिस कांस्टेबल साथ लिये चौराहों और सड़कों पर इक्के, टांगे के घोड़ों और टट्टुओं की दयनीय अवस्था के प्रति परेशान दिखाई देने लगे। टांगे 'इक्के' ठेले और बैलगाड़ियाँ रोक ली जातीं। जानवरों के साज और तंग खुलवा कर जानवरों की पीठ और सीने की जाँच की जाती कि कहीं घाव तो नहीं है? जानवर बहुत बूढ़े तो नहीं हैं? वे भूखे तो नहीं रखे जाते? कई ठेले, इक्के, टांगेवालों और खच्चर-गधों पर लदाई करने वालों का चालान पशुओं के प्रति निर्दयता के अपराध में होने लगा। जो बेचारे बेज़ुबान हैं, उनके प्रति मनुष्य ही दया नहीं करेगा तो वे स्वयम तो कुछ कह नहीं सकते! मिसेज़ रंधीरा के प्रयत्न से डिप्टी कमिश्नर साहब का हुकुम हो गया कि मई-जून के महीनों में दिन के ग्यारह बजे से चार बजे तक भैंसों को ठेलों

में नहीं जोता जा सकता। भगवान की मूक सृष्टि के प्रति न्याय का यह कठिन काम कंधों पर ले मिसेज़ रंधीरा को परिश्रम भी कम न करना पड़ता। दोपहर की चटकती धूप में वे काली ऐनक लगा मोटर में निकलतीं और चौराहों पर देख आतीं कि सिपाही लोग पशुओं के प्रति अन्याय रोकने के लिये धूप में सावधान खड़े हैं या नहीं? सिपाही भी उनकी गाड़ी और उन्हें पहचान गये थे। उन्हें देखते ही एड़ी से एड़ी ठोंक 'सलूट' करते।

शहर में ऐसे ज़ालिम इक्के वाले भी थे जो बकरी के कद के टट्टू के पीछे किसी तरह दो पहिये बाँध उस पर एक पटड़ा जमा शरीफ़ आदमियों को परेशान कर अपने बाल-बच्चों का पेट भरने के लिये ही इक्का चलाते थे। उन्हें 'सवारी' के समय और आराम का कुछ भी विचार न था। ऐसे समय में जब चना रुपये का अढ़ाई सेर भी न मिले, यह लोग घोड़े को दाने और निहारी की जगह चवन्नी की गोली खिला कर अफ़ीम की पिनक में हरदम सड़क पर चलता बनाये रखते हैं। उनके लिये घोड़े जानवर नहीं, केवल इकन्नियां-दुअन्नियां खींचने की मशीन थे।

मिसेज़ रंधीरा की पशुओं के प्रति करुणा से ऐसे बीसियों पीड़ित घोड़े हैवानों के हस्पताल में खड़े हरी-हरी घास खाने लगे और इस घास का खर्चा जुर्माने के रूप में उन पापी इक्के वालों को महाजन से कर्ज़ लेकर जुटाना पड़ता। स्वयम भूखे रहकर और अपने बाल बच्चों को भूखा देख कर इन दुष्ट इक्के वालों को भगवान की न्याय की शक्ति को स्वीकार करना पड़ता।

× × ×

एडवोकेट पी० एन० खरे की वकालत पिछले सेशनजज साहब के अमल में अच्छी जम गयी थी। उन जज साहब का तबादला होगया। मि० खरे अपने पांव जमाये रखने के लिये चिंतित थे। साथी वकीलों की भांति उन्हें भी रंधीरा साहब के स्वभाव-प्रकृति के परिचय की खोज थी।

मि० खरे की साली उमा ने उसी वर्ष काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास की थी। हवा बदली के लिये वह कुछ समय के लिये बहिन के यहाँ आई हुई थी। समाज में स्त्रियों की स्थिति और अधिकार के प्रश्न पर जीजा-साली में प्राय: ही बहस नोक-झोंक और मज़ाक चलता रहता। मि० खरे की दलीलथी :—स्त्री और पुरुष का सम्बंध खेत और किसान का है। एक के बिना दूसरे का निर्वाह नहीं परन्तु स्थान दोनों का भिन्न-भिन्न है। उमा ऐसी बात से चिढ़ जाती। उसका विश्वास था :—स्त्री के लिये गृहस्थ की चार दीवारी के बाहर भी बहुत कुछ करने को है। प्रमाण के लिये उसने मिसेज़ रंधीरा का नाम लिया।

उमा के मुख से मिसेज़ रंधीरा का नाम सुन मि० खरे के मस्तिष्क में बिजली सी कौंध गई। जैसे अदालत में बहस के समय अपने हारते हुये मुकद्दमे के समर्थन में क़ानून का कोई बहुत प्रबल दाँव सूझ जाय! क्षण भर गम्भीर रह, मज़ाक की बहस भूल उन्होंने कहा—'हाँ तो मिसेज़ रंधीरा से मिलती क्यों नहीं? उनके साथ मिल कर काम करो न?.......हम चल कर उनसे तुम्हारा परिचय करा देंगे।' सेशनजज साहब के समीप पहुँचने का इतना सरल उपाय खोज पाने से मि० खरे का मन उत्साहित और प्रफुल्लित हो उठा।

उसी सप्ताह के रविवार की संध्या मि० खरे अपनी साली को मोटर में ले, मिसेज़ रंधीरा से परिचय कराने के लिये सेशन-जज साहब के बंगले पर पहुँचे। बंगले में घुसते ही विचित्र दृश्य दिखाई दिया:—

जून महीने का सूर्य मध्याकाश से गिर क्षितिज के वृक्षों की चोटियों में उलझ निस्तेज होने लगा था। बंगले के पश्चिम ओर अभी धूप थी परन्तु पूर्व की ओर के लॉन में छाया हो गयी थी। उस छाया में मिसेज़ रंधीरा एक नौकर और एक पुलिस कांस्टेब्ल की सहायता से एक मरियल टट्टू की सेवा में व्यस्त थीं।

कुछ दूरी पर रंधीरा साहब दांतों में सिगार दबाये इस दृश्य को ध्यान से देख रहे थे। उनके समीप एक सबइंस्पेक्टर निहायत अदब से खड़े थे। मि० खरे भी ड्योढ़ी के एक ओर अपनी गाड़ी खड़ी कर उमा को ले वहीं एक ओर जा खड़े हुये। मिसेज़ रंधीरा ने अपनी इस विचित्र व्यस्तता के लिये सौजन्यता से मुस्करा कर क्षमा चाही और फिर उसी काम में लगी रहीं।

दो बाल्टियों में 'पोटाशियम-परमैंगनीज़' घुला बेगनी रंग का जल भरा था। नौकर मिसेज रंधीरा की हिदायत के अनुसार लोटे भर-भर कर वह दवाई मिला जल टट्टू की छिली और सड़ी हुई पीठ पर छोड़ रहा था। जल की धारा गिरने से उस घाव से पीप-खून धुल कर बह रही थी। उस पीड़ा से टट्टू नीचे फैल गये जल में अपने सुम पटकने लगता। उन छींटों से घबराकर मिसेज़ रंधीरा फुर्ती से पीछे हट जातीं और फिर करुणा से विवश हो, एक हाथ से साड़ी सम्भालतीं, टट्टू की चिकित्सा के लिये आगे बढ़, नाक पर रुमाल रख घाव को ध्यान से देखने लगतीं। गरमी में और इस कठिन परिश्रम से आने वाले पसीने के उपाय के लिये एक ओर स्टूल पर बिजली का पंखा चल रहा था परन्तु मिसेज़ रंधीरा के माथे पर पसीने की बूँदे छलक आई थीं। घाव धुल जाने के बाद उन्होंने साहब से राय ली—'मर्कोक्रोम लोशन है, वही लगा दें?' साहब ने केवल सिर हिलाकर अनुमति दे दी।

समझा देने से नौकर भीतर जा सुर्ख दवाई की एक शीशी और मलमल का एक टुकड़ा ले आया। मिसेज़ रंधीरा ने मलमल का टुकड़ा मर्कोक्रोम में भिगो, जानवर की उद्दण्डता की चिन्ता न कर स्वयम उसकी पीठ पर फैला दिया।

इसके बाद उन्होंने सब उपस्थित सज्जनों को अंग्रेजी में सुनाया:—लू और धूप में इस ज़रा से जानवर को इक्के में जोत उस पर तीन भारी-

भारी आदमी असबाब सहित बैठे थे और इक्के वाला इसे निर्दयता से पीट रहा था। देखिये तो बेचारा कितना इन्नोसेंट (मासूम) है...... पुअरथिंग (गरीब बेचारा) !' उनके स्वर और चेहरे की रेखाओं में घिघलाहट सी आई—'देखिये बेचारे मूक पशुओं के साथ कितनी क्रूरता और अन्याय होता है ? हम चाहते हैं, ईश्वर हम पर दया करे ! परन्तु ईश्वर हम पर दया कैसे करे, जब हम पशुओं के प्रति इतने क्रूर हैं ?'

साहब ने संक्षेप में अनुमोदन किया। मि० खरे ने मिसेज़ रंधीरा की बात का और अधिक समर्थन कर करुणा से विगलित स्वर में कहा—'ग़रीब, मूक पशु अपने प्रति अन्याय के विरोध में आवाज़ भी तो नहीं उठा सकते ? और यह पशु ही मनुष्यों का पालन करते हैं। इन ग़रीबों के प्रति क्रूरता करके मनुष्य अपने आपको इन पशुओं से भी नीचे गिरा देता है। ऐसे मनुष्यों को तो ऐसा दण्ड मिलना चाहिये कि दूसरों को भी नसीहत हो !'

प्रश्न हुआ कि इस टट्टू का अब क्या हो ? आखिर उसे पुलिस कांस्टेबल के हाथ हैवानों के हस्पताल भिजवा दिया गया।

इतनी देर तक दूसरे काम में व्यस्त रहने के लिये मिसेज़ रंधीरा ने मि० खरे और उमा से फिर क्षमा मांगी और हाथों में गुलाबी रंग की दवाई के दाग़ लगे ही वह उनसे बात-चीत करने के लिये बराम्दे में पड़ी कुर्सियों पर आ बैठीं।

मि० खरे ने उमा का परिचय दिया:—इन्होंने इसी वर्ष बनारस यूनिवर्सिटी से एम० ए० की परीक्षा पास की है। इनका विचार अपना कुछ समय सामाजिक-सेवा के लिये देने का है। इसलिये मैंने उचित समझा कि यह आपके परामर्ष के अनुसार चलें। शहर भर में आपके काम को कौन नहीं जानता ? आपका अनुभव, योग्यता और शिक्षा स्त्रियों में तो एक प्रकार से आदर्श ही समझिये।'

'ओह, नॉट एट ऑल !'–संकोच से मिसेज़ रंधीरा ने कोमल विरोध किया—'नहीं-नहीं, ऐसी क्या बात है ? मैं तो जी यह समझती हूँ कि स्त्रियां ज़रा हिम्मत करें तो बहुत कुछ कर सकती हैं।......... समाज की अवस्था ही एक दम बदल जाय !' और अनुमोदन के लिये उन्होंने उमा और खरे की ओर देखा।

उमा संकोच के कारण चुप रही परन्तु मि० खरे ने उत्साह से समर्थन किया—'इसमें क्या सन्देह ! स्त्रियां ही तो हमारे समाज के पहिये की धुरी हैं !'

'हाँ तो इट इज़ एस्प्लेंडिड आइडिया ! (आपका विचार बहुत अच्छा है)—'मिसेज रंधीरा ने उमा को सम्बोधन किया—'आप जरूर काम कीजिये। मैं सब तरह से आपकी सहायता करने के लिये तैयार हूँ।......अब यह काम देखिये न, 'पशुओं के प्रति निर्दयता निवारण का ! पुरुष इसे कभी उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते'—हाथ की उंगलियों के संकेत और मुखपर करुणा के भाव से वे बोलीं—'स्त्रियों का दिल अधिक कोमल होता है न,?'—उन्होंने मि० खरे की ओर देखा—'निस्सन्देह, निस्सन्देह !' खरे ने समर्थन किया।

× × ×

सेशन जज साहब के यहाँ से लौटने पर उमा विशेष प्रसन्न थी। पुरुषों के मुकाबिले में स्त्रियों की समानता ही नहीं बल्कि श्रेष्ठता मिसेज़ रंधीरा के फैसले से प्रमाणित हो चुकी थी। वह चाहती थी जीजा जी अब बहस करें तो खबर लूँ। परन्तु मि० खरे को बहस के लिये अवसर न था। लाट कर कपड़े बदलने से पहले ही अपने मकान के सामने ठेकेदार सर्दार बलबीरसिंह के यहाँ जाकर उन्होंने सेशन जज साहब के यहाँ जाने और वहाँ देखी घटना का पूरा विवरण सुनाया और फिर रंधीरा साहब और मिसेज़ रंधीरा से जो बहुत देर तक उनकी बहस होती रही, उसका भी सब हाल सुनाया। सर्दार साहब

के यहाँ से उठे तो अपने मकान की बग़ल में सेक्रेटेरियेट के बड़े बाबू मि० ए० हुसैन को भी वह वृत्तान्त सुना आये।

कुछ समय में आस-पास समाचार फैल गया। कई लोग पूछने आये कि सेशन जज के यहाँ कैसे गये थे, क्या क्या बात हुई ? मि० खरे बार-बार वह वृत्तान्त और अधिक ब्योरे से सुना रहे थे। बातें समाप्त होने में ही न आती थीं। भीतर भोजन ठण्डा होने की चिन्ता में उमा की जीजी कुढ़ रही थीं और उमा दिल ही दिल घुट रही थी कि आज जीजाजी बहस करें तो बताऊँ।

भीतर से बार-बार संदेश आने पर मि० खरे भोजन के लिये उठने को हुए तो सरदार साहब एक और पड़ोसी के साथ आ पहुँचे—'मि० खरे कुछ सुना ?··· अरे पड़ोस में कत्ल होगया !'

सर्दार साहब को कुर्सी देना भूल मि० खरे की आंखे फैली रह गईं—'कहां ?'

'यहीं, यह जो पीछे हमारा अहाता है, उसके साथ ही। किसी इक्केवाले ने अपनी बीबी का सिर फोड़ दिया। पुलिस उसे गिरफ्तार करके ले गई है।' सर्दार साहब स्वयम ही कुर्सी खींच बैठ गये। ए० हसैन ने पूछा—'कैसे हुआ ? क्या औरत बदचलन थी, या कुछ और मामला था ?'

सर्दार साहब ने बताया—'नहीं शायद वही इक्केवाला था, जिस की घोड़ी सेशन साहब की मेम साहबा सड़क से खुलवा लेगईं। पुलिस वाले उसे चालान के लिये चौकी ले गये। जो कुछ वह दिन भर में कमा पाया था सो पुलिसवालों ने झाड़ लिया। जो पूजा हुई हो सो अलग। पुलिस चौकी का तो नियम ठहरा कि प्रसाद पाये बिना कोई जा न पाये।·········पांच दस जूते तो लग ही जाते हैं। बेचारा घोड़ी की जगह इक्के को तीन मील धूप-लू में खींचता घर पहुँचा तो बीवी सिर पर सवार होगई। सुनते हैं, आया तो उससे

लड़ने लगी कि तू घोड़ी कहीं बेच आया। उसने पीने को पानी मांगा तो बोली—'पानी देती है मेरी जूती !'......ताव में आगये मियां। नज़दीक ईंट पड़ी थी, उठाकर चुड़ैल का सिर कूटने लगे और वो मुँह बाये रह गई। तब मियां भी सिर थामकर बैठ गये। पुलिस आई और हथकड़ी डाल कर ले गई है।......मियां की बुढ़िया मां है। मियां तो अब क्या बचेंगे ! हां बुढ़िया की हांडी-परात बिक जायगी। एक कच्चा मकान है उसका।

आर० डी० मिश्रा मि० खरे के पड़ोस में ही जूनियर वकील हैं, बोले—'दफ़ा ३०२ तो क्या ३०४ ही लगेगी।'

'यह तो गवाही और पुलिस पर निर्भर करता है–'विचार में डूब दीवार की ओर देखते हुये खरे बोले—'बीबी से कोई शिकायत चली आती हो !......३०४, ३०७, ३०२ कोई भी दफ़ा लग सकती है।'

मिश्रा ने फिर कहा—'कल्पेब्ल होमीसाइड (दण्डनीय नरहत्या) तो है ही।'

खरे फिर उसी मुद्रा में बोले—'है भी, नहीं भी हो सकती है। प्रोवोकेशन के सर्कमस्टांसिस (उत्तेजना की परिस्थिति) प्रमाणित हो जाने पर साफ़ छूट जाय।'

'हां'—सर्दार साहब ने कहा—'जज पर है भाई। जैसा समझ में आजाय ! केस तो सेशन में रंधीरा साहब के यहाँ ही जायगा।'

'सो तो है।'—सिर हिलाकर मि० खरे ने अनुमोदन किया।

× × ×

शकूर और उसकी घोड़ी के मामले में अदालत का और भगवान का न्याय एक दूसरे का अनुमोदन कर एक साथ चला। शकूर की घोड़ी हैवानों के हस्पताल में हरी घास खाती हुई इलाज कराती रही और शकूर हवालात में सड़ता रहा। इलाज होने के बाद घोड़ी की खूराक का खर्चा देने का सामर्थ्य शकूर की मां में न था। घोड़ी को सरकार ने

पन्द्रह रुपये में नीलाम कर दिया। मैजिस्ट्रेट ने कच्ची पेशी में पुलिस की गवाही के आधार पर दुफ़ा ३०४ लगाकर शकूर का मामला सेशन जज की अदालत के सुपुर्द कर दिया।

शकूर की बुढ़िया माँ ने आकर मि० खरे के पाँव पकड़ लिये—'हुजूर वकील साहब मेरे बुढ़ापे की लाठी, मेरे लड़के को बचाइये। उम्र भर हुजूर की जूतियाँ उठाऊँगी।'

× × ×

जैसे दूकानदार के लिये लक्ष्मी का आशीर्वाद गाहक की प्रसन्नता से प्राप्त होता है वैसे ही वकील के लिये लक्ष्मी का निवास मवक्किल की कृपा में है। परन्तु जिस गाहक या मवक्किल से लक्ष्मी स्वयम रूठी हों उसकी सेवा दूकान्दार या वकील क्या करे? और फिर जिस मामले में स्वयम् न्यायकर्ता की पत्नि की अप्रसन्नता का भय हो! कोई अच्छा समझदार वकील यह मामला हाथ में लेने को तैय्यार न हो रहा था। परन्तु जब शकूर की बुढ़िया मां नसीरन ने अपना कच्चा मकान मय आधा बीघा जमीन के ६००) में मि० खरे की माता के हाथ बेच कर उनकी फ़ीस पेशगी दे दी तो न्याय की रक्षा अपना कर्तव्य समझ मि० खरे भय का सामना करने के लिये अदालत के अखाड़े में खड़े हो गये।

चार महीने बाद शकूर का मामला सेशन जज रंधीरा साहब की अदालत में पेश हुआ। हत्या की घटना को सन्दिग्ध प्रमाणित करने की चेष्टा मि० खरे ने न की। शकूर की माँ का आँख देखा बयान, उसके अँगूठे के निशान सहित पुलिस की गवाही में मौजूद था। सफ़ाई की दलील का आधार अभियुक्त की प्रबल मानसिक उत्तेजना और क्षणिक पागलपन के अतिरिक्त और कुछ न हो सकता था। सेशन जज साहब के मन से शकूर के निर्दय और क्रूर होने की धारणा को दूर करना ही सब से आवश्यक था। अदालत के सामने मि० खरे ने सफ़ाई आरम्भ की :--

'माननीय अदालत इस समय अभियुक्त की स्त्री की हत्या की घटना पर विचार करने के लिये प्रस्तुत है। किसी अन्य घटना का उल्लेख करना इस समय अप्रासंगिक समझा जा सकता है। परन्तु जीवन की घटनायें अदृश्य सूत्रों से गुथी रहती हैं। एक घटना दूसरी घटना के लिये परिस्थिति बनजाती है। अभियुक्त की स्त्री की हत्या भी एक दूसरी घटना की परिस्थिति में हुई······'—मि० खरे ने अदालत के सम्मुख जून मास की एक प्रचण्ड दोपहर का चित्र खींचा—'हालात से मजबूर अभियुक्त अपनी मृतक पत्नि के दो बच्चों और अपनी बूढ़ी मां का पेट दो मुट्ठी अन्न से भरने के लिये उस लू और धूप में निकला था। अपनी बूढ़ी और जख्मी घोड़ी का पेट भरने का प्रश्न भी उसके सम्मुख था। अपनी घोड़ी का पेट भी वह घोड़ी के सहयोग से मेहनत किये बिना न भर सकता था। बूढ़ी और ज़ख्मी घोड़ी को इक्के में जोतना क्रूरता और अपराध है इसमें किसी भी सहृदय, शिक्षित व्यक्ति को सन्देह नहीं हो सकता। परन्तु अभियुक्त अपने ज्ञान की सीमा और संस्कारों के आधार पर अपनी घोड़ी का उपयोग-अपने परिवार और घोड़ी का पेट भरने के लिये करना क्रूरता और अपराध न समझ सकता था। अभियुक्त के लिये इस अपराध का दण्ड उसी प्रकार का न्याय था जैसे कोई व्यक्ति पिछले जन्म के अपराध के कारण अंधा या लंगड़ा पैदा होकर बेबस होजाता है! अभियुक्त की घोड़ी उससे छिन जाती है।

'अभियुक्त जानवर की जगह जुतकर अपना इक्का तेज़ लू और सख्त धूप में तीन मील खींच ले जाता है। अदालत हस्पताल के रजिस्टरों में इसबात का प्रमाण पा सकती है कि ६ जून की दोपहर को शहर की सड़कों पर दो व्यक्ति लू का शिकार हुये हैं। जिस अवस्था में अभियुक्त को अपना इक्का खींचकर तीन मील जाना पड़ा, उस पर लू को असर होजाने के सभी कारण मौजूद थे। डाक्टरों का यह निर्विवाद

मत है कि लू का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क पर ही सबसे प्रबल होता है। अभियुक्त यदि लू के प्रहार से गिर नहीं पड़ा तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसके दिमाग़ पर लू का प्रभाव बिलकुल नहीं हुआ। मस्तिष्क की ऐसी अवस्था में अभियुक्त के प्यास से तड़पते घर लौट कर जल माँगने पर उसकी स्त्री उसका अपमान करती है, उसे गाली देती है—पानी देगी तुम्हें मेरी जूती!' इस बात से अनुमान किया जा सकता है कि अभियुक्त किस वातावरण में रहा है और उसके परिवार के संस्कार क्या थे। ऐसी अवस्था में अभियुक्त से जो घटना हो जाती है उसमें उसके विचार या इरादे के लिये कोई अवसर नहीं है। वह स्वयम अपने बस में नहीं है। इस घटना का दायित्व अभियुक्त के विचार और इरादे पर नहीं, परिस्थितियों के संयोग पर है। यदि न्याय के क्षेत्र में उत्तेजना और आकस्मिक घटना का कुछ भी अर्थ है तो इस घटना से अधिक निर्विवाद उदाहरण उत्तेजना और परिस्थिति की विवशता का और नहीं हो सकता। अभियुक्त घटना में केवल निमित्त मात्र बन गया है। इसके साथ ही वह स्वयम ही इस घटनाचक्र का बेबस शिकार भी हुआ है। वह अपनी स्त्री को खो चुका है। दण्ड तो उसे परिस्थितियों ने दिया है। वह मनुष्य और समाज की व्यवस्था से दया, सहानुभूति और सहायता का अधिकारी है। दफ़ा २०४ के अनुसार यह घटना दण्डनीय नरहत्या (कल्पेब्ल होमीसाइड) के क्षेत्र में नहीं आ सकती क्योंकि घटना के समय अभियुक्त अपने आप में न था। हत्या उसके हाथ से हुई है अवश्य परन्तु उसने हत्या की नहीं। अभियुक्त ही नहीं, कोई भी व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में अपने आप में नहीं रह सकता था।'

रंधीरा साहब ने संतोष और शान्ति से मि० खरे की करुणा पूर्ण सफ़ाई सुनी। एक सप्ताह बाद उन्होंने अपना लिखा हुआ फैसला दिया—सफ़ाई के योग्य वकील ने दफ़ा २०४ के अन्तर्गत 'दण्डनीय

'अच्छा वह घोड़ी ?........हां, इक्केवाला जिसने अपनी औरत का कत्ल कर दिया था।'— घोड़ी के प्रसंग से मिसेज़ रंधीरा के होंठ करुणा से सिकुड़ गये—'देखिये, ईश्वर इसी प्रकार न्याय करता है। वर्ना बेचारे बेज़ुबानों का क्या है ? समझिये उस घोड़ी की हाय लग गई उस कमबख्त को।'

'बहुत ठीक कहती हैं आप !'— मि० खरे ने भी संतोष से समर्थन किया—'अन्याय का दण्ड भगवान देते ही हैं, चाहे किसी रूप में दें।'